माघकवि

भारतीय साहित्य के निर्माता

माघकवि

लेखक

चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

साहित्य अकादेमी

Magh Kavi : A monograph on the classical Sanskrit poet by Chandika Prasad Shukla. Sahitya Akademi, New Delhi (1982),

प्रथम संस्करण : १९८२

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-७०००२९
१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४
२९, एल्डाम्स रोड (दूसरा तल्ला), तेनामपेठ, मद्रास-६०००१८

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

क्रम

जीवन-वृत्त

अन्त:साक्ष्य—अपनी अलोकसामान्य भव्यभास्वर प्रतिभा के प्रभाव से महाकवि देश-काल की परिधि को पारकर देशान्तर तथा कालान्तर को भी निरवधि ज्योतिर्मय करता रहता है। वह अपनी तथा अपने युग की चेतना को सार्वभौम एवं सार्वजनीन बना देता है। उसकी अपनी अनुभूति विश्व की अनुभूति बन जाती है। विश्व के जिन साहित्यों को ऐसे महाकवि मिले हैं वे अमर हो गए हैं। संस्कृत साहित्य उनमें सर्वाग्रणी है। और इसे अमरत्व प्रदान करने वाले महाकवियों की ज्योतिर्मयी परम्परा में महाकवि माघ अन्यतम हैं। इनकी एक-मात्र वाङ्मयी कृति 'शिशुपाल-वध' महाकाव्य है, जिसे 'माघकाव्य' भी कहते हैं। अस्तु।

उत्तरी भारत में हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए, जो सभी चक्रवर्ती बनने की महत्त्वाकांक्षा रखते थे। बड़े नरेश के अधीन अनेक छोटे सामन्त भी होते थे, जो उस नरेश की शक्ति घटते ही स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार परस्पर सैनिक संघर्ष आये दिन होता रहता था। इसी समय उत्तर भारत के दक्षिण-पश्चिम भाग में गुजरात, राजस्थान और वलभी में कुछ अधिक बलवती राजनीतिक शक्तियां थीं। वलभी के ही अन्तर्गत श्रीभिन्नमाल या भीनमाल राज्य था। श्रीभिन्नमाल को ही सम्भवत: श्रीमाल भी कहते थे। इसी भिन्नमाल के नरेश वर्मलात (धर्मनाभ) के यहाँ एक श्रीसुप्रभदेव मंत्री थे। 'शिशुपालवध' के अन्त में जो पाँच श्लोक कविवंश के विषय में दिये गए हैं, उनमें सुप्रभदेव को वर्मलात के यहाँ सर्वाधिकारी तथा दूसरा नरेश (देवोऽपर:) ही कहा गया है—

> 'सर्वाधिकारी सुकृताधिकार: श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञ:।
> असक्त-दृष्टिर्विरजा: सदैव देवोऽपर: सुप्रभदेवनामा ॥१॥'

'सुप्रभदेव की सलाह को किसी भी प्रकार का अनुरोध किए बिना ही नरेश ऐसे मानता था जैसे बुद्धिमान् लोग तथागत (गौतमबुद्ध) की बात मानते हैं।' उन सुप्रभदेव के उदात्त, क्षमाशील, मृदु एवं धर्मपरायण पुत्र 'दत्तक' हुए।

'तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।२।'

इन्हीं 'दत्तक' का दूसरा नाम 'सर्वाश्रय' भी था, जो सम्भवतः उनकी उदारता एवं दानशीलता के कारण था—

'सर्वेण सर्वाश्रयइत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।।४।।'

उन्हीं दत्तक सर्वाश्रय के पुत्र माघ कवि थे, जिन्होंने 'शिशुपाल-वध'-नामक काव्य की रचना की—

'तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यंव्यधत्तशिशुपालवधाभिधानम्' ।।५।।

यद्यपि इस अन्तिम श्लोक में कवि का वास्तविक नाम नहीं दिया गया है, किन्तु प्रतिसर्ग के अन्त में पुष्पिका में "इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये" दिया हुआ है, तथा १९वें सर्ग के १२०वें श्लोक में जो चक्रबन्ध प्रयुक्त किया गया है, उसमें ५वें वृत्त में 'शिशुपालवधः' तथा ८वें वृत्त में 'माघकाव्यमिदम्' पढ़ा जा सकता है। और, शिशुपालवध की कुछ प्रतियों में सर्गान्त-पुष्पिका में इस प्रकार भी लिखा मिलता है :

"इति श्रीभिन्नमालवास्तव्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधं महाकाव्यं···"—जिससे भी उनका नाम माघ, पिता का नाम दत्तक, स्थान श्रीभिन्नमाल तथा उनका महावैयाकरणत्व प्रमाणित होता है। इस अन्तः-साक्ष्य पर माघ के विषय में इतनी ही सूचना मिलती है।

बहिःसक्षय—माघ के जीवनवृत्त पर कुछ अन्य ग्रन्थों में भी उल्लेख मिलते हैं। उनमें एक बल्लाल-पंडित-रचित 'भोज प्रबन्ध' है, जिसमें माघ को अतिशय दानी होने के कारण धनहीन होकर सपत्नीक धारानगरी में जाने वहाँ पत्नी के हाथ 'कुमुदवनमपश्रि' आदि प्रसिद्ध प्रभात-वर्णन-विषयक श्लोक राजा भोज के दरबार में भेजने, भोज से प्राप्त पारितोषिक को भी पत्नी द्वारा मार्ग में याचकों को दे दिए जाने, फिर कुछ याचकों के निराश लौटने पर निर्वेद से माघ का दम तोड़ देने तथा राजा भोज द्वारा उनकी अन्त्येष्टि क्रिया किए जाने का मार्मिक वर्णन है। किन्तु राजा भोज का समय सन् १०१० से १०५० ई० के बीच माना जाता है। और, जैसा कि आगे सिद्ध किया जाएगा, माघ का समय वामन (८०० ई०) तथा आनन्दवर्धन (८५० ई०) के बाद रखा ही नहीं जा सकता, क्योंकि इन दोनों आचार्यों ने शिशुपालवध से उदाहरण लिए हैं। वामन ने तुल्य-योगिता अलंकार के उदाहरण में 'रम्या इति प्राप्तवतीः पताकाः' (शि०व० ३।५३) दिया है तथा आनन्दवर्धन ने इस श्लोक को और 'त्रासाकुलः परिपतन् परितो-

निकेतान्' (शि०व० ५।२६) को प्रसंगान्तर में उद्धृत किया है। अतः भोज-प्रबन्ध की माघकथा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती है।

एक अन्य ग्रन्थ जैन मेरुतुङ्गाचार्य द्वारा १३६१ संवत्सर में प्रणीत 'प्रबंध-चिन्तामणि' है। उसमें भी भोज-प्रबन्ध का-सा ही माघ-जीवन वर्णित है। अतः वह भी उसी प्रकार अप्रामाणिक ठहरता है। एक तीसरा ग्रन्थ श्रीचन्द्रप्रभसूरि-प्रणीत 'प्रभावक-चरित' (१३३४ वि०) है। उसके चतुर्दश शृंग के 'सिद्धर्षि-चरित'-प्रसंग में माघ-जीवन-वृत्त वर्णित है। इसमें भी माघ को भोज का बालमित्र कहा गया है। 'प्रभावकचरित' ग्रन्थ ही जनश्रुतियों तथा किंवदन्तियों के आधार पर निर्मित है—जैसा कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा है :

'बहुश्रुतमुनीशेभ्यः प्राग्ग्रन्थेभ्यश्च कानिचित्।
उपश्रुत्येतिवृत्तानि वर्णयिष्ये कियन्त्यपि॥

अतः इसकी भी क्या प्रामाणिकता !

तो, इस प्रकार माघ-इतिवृत्त कहने वाले पूर्वोक्त तीनों ग्रन्थों के अप्रामाणिक सिद्ध हो जाने पर शिशुपालवध के अन्त में आये हुए श्लोकों में प्राप्त सूचना को ही अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के साथ परीक्षित करना अधिक उपयुक्त समझ पड़ता है। अस्तु।

देश-काल

डा० किलहार्न को राजस्थान के बसन्तगढ़नामक स्थान पर वर्मलात का एक शिलालेख मिला है, जिसका समय वि० सं० ६८२ अर्थात् ६२५ ई० है। भीनमाल के आसपास के प्रदेश में इस लेख के मिलने के कारण, निश्चित ही ये ही वर्मलात सुप्रभदेव के आश्रयदाता होंगे। अतः उनके पौत्र माघ का समय उनके करीब ५० वर्ष बाद अर्थात् ६७५ ई० के आसपास माना जाना चाहिए। आचार्य वामन द्वारा माघ कृत श्लोक का उद्धरण दिए जाने के कारण, माघ ८०० ई० के पूर्व ही माने जाएंगे। और, शिशुपालवध के श्लोक :

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥ (२।११२)

में 'न्यास' और 'वृत्ति' की चर्चा आयी है। यहाँ 'वृत्ति' से तात्पर्य पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर की गयी जयादित्य (६५० ई०) की 'काशिकावृत्ति' है। अतः माघ का समय ६५० ई० के बाद ही होना चाहिए। किन्तु 'न्यास' के विषय में विवाद है। यदि जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई० के आसपास)-कृत काशिका की 'विवरणपंजिका'-नामक टीका, जो 'न्यास' नाम से प्रसिद्ध है, मानी जाती है,

तो माघ का समय ७०० ई० के पर्याप्त बाद होना चाहिए, जो संगत नहीं। अतः 'न्यास' से यहाँ कोई जिनेन्द्र-कृत 'न्यास' से भी पूर्ववर्ती कृति, जैसा कि स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि ने कई पूर्ववर्ती न्यास ग्रन्थों का उल्लेख किया है, और, जैसा कि बाणभट्ट (६२० ई०) ने भी श्लेष द्वारा किसी 'न्यास' ग्रन्थ का उल्लेख किया है (कृतगुरुन्यासा लोक इव व्याकरणेऽपि—हर्षचरित), ही मानी जानी चाहिए। और इस प्रकार माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध अर्थात् ६७५ ई० के आसपास मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होगी।

वंश तथा प्रारम्भिक जीवन

'प्रभावकचरित' में चन्द्रप्रभ सूरि ने माघ के पितृव्य (चाचा) शुभंकर को 'श्रेष्ठी' लिखा है। उस समय 'श्रेष्ठी' शब्द जैनियों तथा वैश्यों दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। जो वैश्य जैनधर्मावलंबी नहीं थे, वे भी श्रेष्ठी कहे जाते थे। श्रेठी वैश्यों का सामान्य अभिधान था। शुभंकर के पुत्र सिद्ध ने अपनी 'उपमिति-भाव-प्रपंचकथा' में जिनेश्वर की वन्दना की है। सम्भवतः माघ के पितृव्य तथा भाई सिद्धर्षि जैन थे। किन्तु माघ के शिशुपालवध में तो माघ की वाङ्मयी मूर्ति ब्राह्मण-धर्मावलंबी ही है। वहाँ स्थान-स्थान पर उनका ब्राह्मणत्व झलकता मिलता है।

उनका जीवन ऐश्वर्य-विलास के बीच पला प्रतीत होता है। उन्होंने जीवन में छककर शृंगार का सेवन किया था और वात्सल्य से विह्वल भी हुए थे। उनके सम्भवतः एक पुत्री भी थी (शि० व० ११।४०) और उन्होंने उस पुत्री की विदाई भी देखी थी (शि० व० ४।४७)। सम्भवतः सैनिकयात्रा में भी वे कभी सम्मिलित हुए थे, जो शिविर-जीवन के चित्रण से प्रमाणित होता है। पश्चिम समुद्र-तट के आसपास का प्रदेश उनका अतिशय परिचित था। उस प्रदेश के पशुओं एवं वनस्पतियों का उन्होंने सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया था। सम्भवतः श्रीमाल के निवासी होने के कारण ही उन्होंने अपने महाकाव्य का 'श्र्यङ्क' नाम रखा हो। सामन्तीय विलास के बीच पालन-पोषण होने के कारण माघ की लेखनी से ऐश्वर्य-वैभव के चित्रण स्वतः प्रसूत होते चलते हैं—सेना-यात्रा में वन-पर्वत पर भी वही विलास दिखता है। वस्तुतः माघ के व्यक्तित्व पर सबसे गहरा प्रभाव राजसभा के वातावरण का पड़ा है। उनका व्यक्तित्व सामन्तीय वैभव-विलास में पूर्णतः पगा हुआ है। राजाश्रित कवि भव्य प्रासाद में ऐश्वर्य एव सम्पन्नता का जीवन बिताता था। रसिकों एवं विदग्धों की गोष्ठियों में भाग लेता था। और, इन गोष्ठियों में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए उसे उक्ति-वैचित्र्य, बौद्धिक व्यायाम, वाग्जाल तथा वैदुष्य प्रदर्शन में निपुण होना अनिवार्य था। व्युत्पत्ति-प्रदर्शन उस युग की काव्य-

चेतना बन गयी थी। अतएव आचार्य दण्डी ने व्युत्पत्ति को बहुत महत्त्व दिया है। कवि की अभिरुचि, प्रवृत्ति और प्रकृति काव्य को सीधे प्रभावित करती है। काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है—'अयमात्मा वाङ्मयः'। माघ का विशाल पाण्डित्य, असीम-अगाध ज्ञान तथा विलासमयी प्रवृत्ति उनके काव्य में स्पष्टतः झलकती है। वस्तुतः व्यक्ति की मानसिकता का निर्माण उसकी शारीरिकता द्वारा अधिक होता है। काव्यसर्जना के समय कवि उद्‌बुद्ध ऐन्द्रिय संस्कारों को ही परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करता है। कवि के व्यक्तित्व में उसकी सांस्कृतिक-साहित्यिक-समकालिक तथा आभिजात्य-सम्बद्ध चेतना पृष्ठभूमि रूप में रहती है। अर्थान्तर-न्यास-गत सामान्य उक्तियों द्वारा तथा प्रबन्धकाव्यों में पात्रों के वचन एवं कर्म द्वारा कवि अपनी बात कह जाता है—'नायकमुखेन कविरेव मन्त्रयते' (नमिसाधु)। जिस स्वभाव का कवि होता है तदनुरूप ही उसका काव्य होता है। कवि अपनी अनुभूतियों को ही सार्वभौम सर्वजन-संवेद्य बनाता है। इस प्रकार यदि माघ का व्यक्तित्व उनके महाकाव्य में पढ़ा जाए तो कुछ इस प्रकार गोचर होता है :

महाकवि माघ वेद, पुराण, मीमांसा, व्याकरण, कोष, सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्धदर्शन, राजनीति, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र, सगीत, अश्वविद्या, हस्तिविद्या आदि विषयों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। लोकचेष्टाओं का तथा पशुओं की विविध चेष्टाओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। पूज्य के सम्मान एवं सत्कार में उनकी निष्ठा थी। वे स्वभाव से मानी थे। शत्रुकृत पराभव उन्हें असह्य था। बड़ी सम्पदा पाकर भी, बड़े पद पर प्रतिष्ठित होकर भी उन्हें अपने जनों को विस्मृत या उपेक्षित करना उचित नहीं लगता था। वे आत्मशक्ति का ज्ञान सदा आवश्यक मानते थे। उनके मत से महान् छोटों की बातों की परवाह नहीं करते। उनका सिद्धान्त था कि उपकार करके महान् वहाँ से हट जाते हैं—उपकृत का उपरोध नहीं करते।

श्रीकृष्ण उनके परम आराध्य थे। शिशुपालवध की रचना के बहाने उन्हें श्रीकृष्ण का चरित-कीर्तन करना था। उन्होंने उनका चरितमात्र इसमें चारु माना है, और सब कुछ तो ऐसे ही है—

"लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु"

आपाततः यद्यपि इस महाकाव्य का प्रयोजन 'सुकविकीर्तिदुराशा' है, किन्तु श्रीकृष्ण-चरितगान ही परम प्रयोजन है।

माघ की एकमात्र वाङ्मयी कृति 'शिशुपालवध' महाकाव्य है, जिसकी रचना इन्होंने बीस सर्गों में की है।

काव्य-कथानक

इन्द्र-सन्देश

जगत् की सुव्यवस्था के लिए श्रीसम्पन्न वसुदेव के गृह में निवास करते हुए जगदाधार श्रीकृष्ण ने एक दिन गगन-तल से उतरते हुए तेजःपुंज पद्मयोनिपुत्र नारद को देखा। नीचे की ओर आते हुए उस सब ओर फैलने वाले तेज को लोग व्याकुल दृष्टि से देख रहे थे—क्योंकि सूर्य की गति तो तिरछी होती है और अग्नि की लपटें ऊपर को उठती हैं, तो नीचे की ओर आता हुआ यह क्या है यह निश्चय नहीं हो पा रहा था। पहले तो वह केवल तेज.पुंज लगा, फिर शरीरधारी समझ पड़ा, फिर अवयवों के स्पष्ट होने पर पुरुष प्रतीत हुआ और इस क्रम से अन्त में प्रभु श्रीकृष्ण ने उसे नारद रूप में पहिचाना। विशाल श्याम मेघों के नीचे-नीचे कर्पूर-गौर देवर्षि गजेन्द्रचर्म ओढ़े, विभूति लपेटे शंकर के समान लग रहे थे। कमल-केसर-सी चमकती जटाओं को धारण किए हुए शरच्चन्द्र-धवल देवर्षि विपाकपीत लतापंक्तियों से ढके हिमधवल नगाधिराज की भांति प्रतीत हो रहे थे। वे पीतमौञ्जी मेखला पहिने कृष्णाजिन धारण किए हुए तथा पीत यज्ञोपवीत से सुशोभित थे। उनके हाथ की स्फटिकाक्षमाला रक्तवर्ण अंगुष्ठांशु से मिश्रित हो प्रवालयुक्त-सी लग रही थी। चितकबरे चमरुचर्म ओढ़े देवर्षि अपनी 'महती' नामक वीणा को, जो पवन के संघटन-मात्र से विभिन्न स्वरों का उद्गिरण कर रही थी, बार-बार निहार रहे थे। अन्त में देवर्षि ने अनुचर देवों को वापस लौटाकर पुरन्दर-प्रासाद-से मनोरम चक्रपाणि के महल में प्रवेश किया। नीचे उतरते हुए सूर्य-सदृश तपोनिधि ने अभी भूमि पर पैर नहीं रखे थे कि तब तक श्रीकृष्ण ससम्भ्रम अपने आसन से उठ खड़े हुए और अभ्यागत देवर्षि की अर्घ्य आदि से सपर्या कर उन्हें अपने हाथ से आसन देकर बैठाया और उनका समुचित आतिथ्य कर स्वयं अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। देवर्षि नारद ने भी समस्त तीर्थों का पावन तथा पापनाशक जल अपने कमण्डलु से स्वयं अपने हाथों मे लेकर श्रीकृष्ण के ऊपर छिड़का, जिसे उन्होंने नतशिर से स्वीकार किया।

तपोधन के आगमन से उत्पन्न जगन्निवास का हर्ष उनके शरीर में नहीं समा रहा था। वे शुचिस्मित वाणी बोले—"भगवन्, आपका दर्शन प्राणियों की

त्रैकालिक योग्यता को प्रमाणित करता है—वर्तमान के पापों को नष्ट करता है, अतीत के पुण्यों के कारण ही होता है तथा अनागत कल्याण का कारण बनता है। आपके दर्शनमात्र से यद्यपि कृतार्थ हो गया हूँ तथापि आपकी गौरवमयी वाणी सुनना चाहता हूँ। भला कल्याणलाभ से किसको तृप्ति होती है! मेरे घर आपका जो यह महिममण्डित आगमन हुआ उसी ने मुझमें गौरव-भवना उत्पन्न कर यह धृष्टता प्रदान की कि मैं पूछूं—भगवन्, विगतस्पृह भी आपके आगमन का क्या प्रयोजन है।"

इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण से नारद मुनि ने कहा, "पुरुषोत्तम, आप ऐसा न कहें—योगियों के लिए भी तो आप ही साक्षात्करणीय हैं। पुराविदों ने आपही को तो प्रकृति से परे पुरातन पुरुष कहा है। यदि अपने तेज से जगद्द्रोहियों का विनाश करने के लिए आप भूतल पर अवतार न धारण किये होते तो समाधि-निष्ठों के लिए भी दुर्लभ आप मुझ-सदृश जनों को दृष्टिगोचर कैसे होते! हे विश्वम्भर, मदोद्धतों से पीड़ित इस विश्व की रक्षा आप ही कर सकते हैं। तो, हे उपेन्द्र, महेन्द्र ने कुछ विश्व-कल्याण के लिए सन्देश भेजा है। उनके समस्त कार्यों में आप ही अग्रणी रहते हैं—अतः उस सन्देश को सुनें, 'दिति का पुत्र सूर्य-सा तेजस्वी हिरण्यकशिपु हुआ। वह जिस दिशा की ओर जाता भयभीत देवगण उसी दिशा की ओर तीनों सन्ध्याकाल में प्रणाम करते थे। आपने विशाल नृसिंह-रूप धारण कर अपने नाखूनों से उसका उदर विदीर्ण कर वध किया।

फिर वही जन्मान्तर में रावणनामक अत्यन्त भीषण राक्षस हुआ, जिसने त्रैलोक्य की प्रभुता पाने के लिए भगवान् पिनाकी को अपने दसों सिर चढ़ाकर प्रसन्न किया था। उसके प्रताप से देवगण थर्रा रहे थे। आपको स्मरण होगा आपने दशरथपुत्र होकर वनान्त से वनितापहारी उस रावण का सागर बाँध कर लंका में जाकर वध किया था।

वही इस समय शिशुपालनामक दूसरी भूमिका निभा रहा है। बिना किसी देवता की आराधना के उसमें सहज शक्ति है, जिससे वह समस्त जगत् को प्रताड़ित कर रहा है।

तो, विधि-विधान का उल्लंघन करने वाले इसे भी यमपुरी का अतिथि बनाइए। अत्याचार की पराकाष्ठा पर पहुँचे दुर्जन का निपात करना ही उचित है।" श्रीकृष्ण ने इस इन्द्र-सन्देश को स्वीकार किया, और उधर देवर्षि स्वर्ग की ओर उड़े इधर कंसारि की भौंहें शिशुपाल के प्रति वक्र हो उठीं।

गृहमन्त्रणा

उसी समय उधर राजसूय यज्ञ करने के इच्छुक युधिष्ठिर द्वारा निमन्त्रित, इधर स्वयं शिशुपाल पर अभियान के इच्छुक मुरारि कार्य की द्विविधा से आकुल-

चित्त हो उठे। अतः उद्धव एवं बलराम के साथ मन्त्रणा करने सभाभवन में गए। वहाँ उन्होंने प्रकरण को प्रस्तुत करते हुए कहा कि "धर्मराज युधिष्ठिर के दिग्विजयी भाइयों ने भूपालों को अधीन कर रखा है। वे हमारे बिना भी अपना यज्ञ पूर्ण कर सकते हैं। किन्तु उभरते शत्रु तथा रोग की उपेक्षा न करनी चाहिए। यह सात्वती-पुत्र शिशुपाल जो मुझसे द्वेष रखता है, उसका तो मुझे कोई कष्ट नहीं, किन्तु, जो सामान्य लोगों को जलाता रहता है, यह मुझे दुःखकारक है। मेरा तो यह मत है। अब आप दोनों का भी सुनूँ, क्योंकि तत्त्वज्ञ व्यक्ति भी अकेले किसी कार्य में निर्णय लेने में सन्देहापन्न होता ही है।"

बलराम ने श्रीकृष्ण के मत का समर्थन करते हुए कहा, "कृष्ण ने जो बात कही उस पर उसी रूप में तुरत अमल करना ही उसका उत्तर है। शत्रु-पक्ष का पूर्ण रूप से उन्मूलन किए बिना प्रतिष्ठा दुर्लभ होती है। जब तक एक भी शत्रु जीता है तब तक सुख कहाँ? जो अपकार करे वही शत्रु, जो उपकार करे वही मित्र होता है। रुक्मिणी के कारण शिशुपाल तुमसे वैर मानता है। तुम जब भौमासुर को जीतने गए थे तो उसने इस द्वारिका पर आक्रमण किया था। बभ्रु की पत्नी का तो उसने अपहरण ही कर लिया। तो, उसने तुमसे केवल एक बार अपकृत होकर अनेक रूप से अनेक बार हमारा अपकार किया है। अतः अपनी करतूतों से वह हमारा दुश्मन ठहरता है। और, अमर्ष से दहकते शत्रु से वैर साध कर उदासीन होना भी घातक है। दण्डसाध्य शत्रु के साथ सामादि अन्य उपाय भी उल्टे सिद्ध होते हैं। और, जरासन्ध के मारे जाने पर तो उसका कोई प्रबल मित्र भी नहीं बचा है। अतः मेरी राय में इन्द्रप्रस्थ की ओर न जाकर हमारी यादव-सेना माहिष्मती को चलकर घेर ले। पाण्डव यज्ञ करें, इन्द्र अपने स्वर्ग की रक्षा करें, सूर्य अपने तपें, और हम भी अपने शत्रुओं से निपटें। सभी तो अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।"

फिर श्रीकृष्ण ने उद्धव को अपना मत व्यक्त करने के लिए आँखों से इशारा किया। उद्धव ने बलराम के कथन की प्रशंसा करते हुए अपना मत व्यक्त किया, "चेदिनरेश को मित्र-रहित अकेला नहीं समझना चाहिए। वह रोगों के समूह राजयक्ष्मा की भाँति राजाओं का समूह-रूप है। बाणासुर, कालयवन, शाल्व, रुक्मि, द्रुम इत्यादि दुष्ट नरेश उसके पक्के साथी हैं। साथ ही, तुम्हारे अन्य शत्रु भी उनके मित्र हो जाएंगे। और इस प्रकार सम्पूर्ण राजमण्डल को इस समय क्षुब्ध करके अजातशत्रु के यज्ञ में विघ्न उत्पन्न कर तुम्हीं उनके प्रथम शत्रु बनोगे जबकि धर्मराज तुम्हें ही सबसे अधिक समर्थ सहायक समझ कर यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए हैं। शरणागत जो शत्रु भी हो तो उस पर अनुग्रह किया जाता है। और जिन देवताओं के लिए उस शत्रु का वध श्रेयस्कर मानते हो, उन्हें तो यज्ञ और अधिक इष्ट है। फिर, तुमने जो अपनी बुआ (शिशुपाल की माँ) से प्रतिज्ञा की है

कि शिशुपाल के सौ अपराधों को सहूँगा उसका भी तो प्रतिपालन करना है। इस-लिए अजातशत्रु की राजधानी की ओर ही सभी राजाओं को पहुँचने की प्रेरणा अपने चरों से दिलवाओ। वहाँ पाण्डुपुत्र जब तुम्हारे प्रति विशेष भक्ति दिखाएंगे उस समय ये मत्सरी राजगण स्वयं वैरपूर्ण हो उभड़ पड़ेंगे। फिर वहाँ अपने मित्र लोग उनसे पृथक् हो जाएंगे। अपने सहज चापल्य दोष से शत्रुगण स्वयं तुम्हारी प्रतापाग्नि में शलभ बन जाएंगे।"

द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान

जैसे सूर्य उत्तरायण से दक्षिणायन होते हैं उसी प्रकार युयुत्सा को त्यागकर सौम्य श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ के लिए पूरी तैयारी से प्रस्थान किया। उनके पीछे उनकी चतुरंगिनी सेना चली। प्रस्थान करते हुए मनोरम मुरारि को देखने के लिए नगरी की प्रत्येक सड़क पर जनसमूह उमड़ पड़ा—प्रीति चिरपरिचित वस्तु को भी नवीन-सी बना देती है। सेना की सघन भीड़ के कारण धीरे-धीरे चलते अपने रथ की गति को श्रीकृष्ण न जान पाए, क्यों कि वे द्वारिका नगरी की शोभा देखने में तल्लीन थे, जिसके निवासियों के पास इतना और ऐसा वैभव था कि जिसकी मन कल्पना भी नहीं कर सकता था, तथा सुन्दरी ललना के ललाट-तिलक की भाँति जिसकी श्रीसमृद्धि को श्रीकृष्ण स्वयं बढ़ा रहे थे।

नगर से बाहर आकर उन्होंने सागर के तट पर स्थित सागर-जल में प्रति-बिम्बत वृक्षों की शोभा देखी। सागर मानों युगान्तबन्धु कृष्ण की अगवानी के लिए अपनी उत्तुंग तरंग-रूपी बाहुएँ फैला रहा था। श्रीकृष्ण के सैनिक लवंग की माला पहिनते, नारियल का पानी पीते तथा ताजी सुपारी का आस्वाद लेते हुए समुद्र का आतिथ्य पा रहे थे। धीरे-धीरे श्रीकृष्ण की सेना आगे बढ़ी।

रैवतकगिरि-रम्यता

मार्ग में श्रीकृष्ण ने उन्नतशिखरों वाले पर्वत रैवतक को देखा—जो अनेक बार दृष्टपूर्व भी श्रीकृष्ण के विस्मय का कारण बना। वस्तुतः वही रमणीयता है, जो प्रतिक्षण नवीन लगे। सारथि दारुक ने पर्वत के उच्च शिखर, निर्झर, मेघ-मण्डल, स्फटिकशिलाओं, पुष्पभारावनतवृक्षराजि, लताओं, पक्षिगण, रत्नराशि, चमरियों, पद्मिनिओं, प्रवहमान नदियों, समाधिरत योगीजनों, विशाल सरोवरों आदि का सरस एवं प्रौढ़ वर्णन किया।

गिरि-विश्राम

जिसे सुनकर श्रीकृष्ण ने वहां विश्राम करना चाहा। अतः सेना उस पर्वत की

ओर मुड़ी । सेना के हाथी, घोड़े, ऊंट, गर्दभ आदि के चलने से बड़ी धूल उड़ रही थी । कुछ सामन्त नरेशों ने गुफाओं में ही और कुछ ने श्रीकृष्ण के शिविर के पास अपने आवास निर्मित किए । सामान्य सैनिकों ने पेड़ों की छाया का आश्रय लिया । श्रान्तक्लान्त राजदाराएं उन आवासों में दूर्वाप्रतान की नैसर्गिक शैय्या पर ही निद्रा-सुख लेने लगीं । शिविर के पास दूकानें सज गयीं । सैनिकगण पर्वतीय नदियों का पानी पीते, वस्त्र धोते, स्नान करते, मृणाल आस्वादित करते तथा कमलपुष्पों को धारण करते हुए उन (नदियों) के प्रति "अनुपभोग के कारण व्यर्थ" होने का कलंक दूर कर रहे थे । हाथी, घोड़े, बैल, ऊंट आदि सेनांगों की स्वाभाविक मनोरम चेष्टाएं देखते ही बनती थीं ।

ऋतुवैभव

इस प्रकार उस पर्वत पर विश्राम के इच्छुक श्रीकृष्ण की सेवा के लिए छहों ऋतुओं ने अपने-अपने नियत वृक्षों में अपनी पुष्पसमृद्धि बिखेर दी । वसन्त की शोभा नूतन पलाशवनों में, विकसित पद्मों में, कुरबकस्तबकों में, विकच चम्पकों में, सुहावने अशोकों में, रसाल-मंजरियों में, बकुल-मकरन्द-पानमत्तमधुप-गुंजारों में तथा कोकिल की कूकों में फैली हुई युवकों के लिए उद्दीपन बन रही थी ।

ग्रीष्म का वैभव शिरीष, नवमल्लिका, पाटल (गुलाब) आदि के पुष्पों में दमक रहा था ।

दूसरी ओर वर्षुक मेघ रैवतक पर बिना समय के ही छा गए । मयूरपंक्ति अपनी केकाध्वनि कर नाचने लगी । वन में विकसित कदम्ब तथा शिलीन्ध्र की सुगन्ध लिए पवन चलने लगा । कुटज, केतकी तथा मालती की पुष्पसमृद्धि प्रेमियों को विवश कर रही थी । बिजली की कौंध से भीत सुन्दरियां भवन से बाहर जाने की अनिच्छुक होकर यदुपुंगवों के साथ रमण कर रही थीं ।

शरद् की हंसध्वनि मयूरकेका को फीकी कर रही थी । कमल तथा सप्तच्छद का मकरन्दपान कर मधुपावली मत्त हो रही थी । दिशाएं कहीं निर्मेघ धवल लग रही थीं । आकाश में शुक-पंक्ति उड़ने लगी ।

हेमन्त-पवन नदियों के जल को हिम-शीतल करने लगा । प्रियालिंगन द्वारा शीतव्यथा दूर की जाने लगी ।

शिशिर-पवन ने प्रियंगुलताओं को पुष्पित कर दिया । लोध्रपराग उड़ने लगी । शीतापहारी प्रियास्तनों का आलिंगन और अधिक सुखद बन गया । कुन्दलताएं फूलों से लद गयीं ।

इस प्रकार षड्ऋतुसंहार ने श्रीकृष्ण को तथा उनकी सेना को उस पर्वत पर विहार करने के लिए मानो आमन्त्रित किया ।

वनविहार

श्रीकृष्ण षड्ऋतुसमृद्ध वनप्रदेश की सुषमा देखने निकल पड़े। यदुगण भी अपनी युवतियों सहित निकले। अंगनाओं ने वनभूमि पर पैर रक्खा कि उन (अंगनाओं) में अदाएँ उतरीं। और कुपितनायिकानुनय होने लगा। सुन्दरियों की भुजाओं से आन्दोलित तरुशाखाएं उनके सिर पर पुष्प-वर्षा कर रही थीं। वनान्तप्रदेश में प्रिय के साथ सुन्दरियों की विविध चेष्टाएं होने लगीं। प्रियानुगमन होने लगा। कोई सुन्दरी मधुमद से आँखें बन्द कर प्रिय की गोद में ही गिर पड़ती है—अंगनाओं की भीरुता गुण मानी ही गयी है। इस प्रकार मुग्धा की क्रीड़ा, सपत्नी का हर्ष-ईर्ष्याप्रकाशन, खण्डिता द्वारा सापराधप्रिय की भर्त्सना, वन-विहार-श्रम-जन्य-स्वेदापनोदनार्थ जलक्रीड़ा आदि चलने लगी।

जलक्रीड़ा

जलविहार में प्रेयसियों का अपने प्रिय अनुरागियों के संग मनोरम विभ्रमों के साथ क्रीड़ाएँ होने लगीं। धीरे-धीरे सूर्यास्तमन होने को हुआ।

पतन के समय दिनपति के सहस्र कर भी उसे न सभाल सके। नवकुंकुमारुण-पयोधरों वाली वारुणी दिशा के मनोरम अम्बर को अपने करों से सम्भाले हुए दिनपति उसकी सन्निधि में अतिशय सुशोभित हो रहे थे। धीरे-धीरे तप्त-स्वर्ण-कुम्भ-सदृश रवि-गोलक पश्चिम पयोधि में डूबता हुआ ऐसा लग रहा था, मानो ब्रह्मा के नख से द्विधा-विदीर्ण विशाल ब्रह्माण्ड का एक खण्ड हो। सन्ध्या की लालिमा छा गयी। धीरे-धीरे मानो पर्वत की गुहाओं से निकलकर अन्धकार-पटल सभी ओर फैल रहा था।

फिर, पूर्व दिशा भास्वर हो उठी—वसुधा के अन्तस् से शेषनाग के सहस्र फणों की मणि-रश्मियों-सी चन्द्र-किरणें दमकने लगीं। अपने लक्ष्मण से युक्त चन्द्रमा-रूपी राम ने जलधि पार कर ऋक्ष (तारा)-गणों के साथ तिमिरौघ-राक्षस-कुल का विनाश कर दिया। रजनीशशांक की परस्पर बड़ी शोभा हुई। चन्द्रमा की चन्द्रिका उद्दीपन होती ही है, अतः प्रेमियों की रतिक्रीड़ा के उपक्रम होने लगे—दूती भेजी गयी। प्रिय समागम में सम्भ्रम होने लगा और चन्द्रिका-विहार प्रारम्भ हो गया।

रतिक्रीड़ा

चन्द्रिका में प्रेमियों ने मद्यपान प्रारम्भ किया—फिर अधरपान होने लगा। सौन्दर्य और यौवन के साथ मधुपान ने प्रियसंगम कराया और रतिक्रीड़ा चल पडी। रमणी के सीत्कार, मणितध्वनि, करुणोक्ति, स्निग्ध वचन, निषेध-शब्द,

हास, भूषणरव सब कुछ उस समय कामसूत्र के ही पद लग रहे थे। ऐसे ही सारी रात क्रीडा होती रही, मानो उनकी ग्राम्यचेष्टा देखकर रजनी ने भी लज्जा से अपने मुखचन्द्र को अवनत कर लिया। प्रभात होने को हुआ।

प्रभात-सुषमा

मागधजन स्निग्ध कण्ठ से श्रीकृष्ण को प्राभातिकी सुनाते हैं—"पीलवान हाथी को करवट बदलवाकर पुनः सुला रहा है। तरुणियां जगकर भी रतिखेद से देर में सोए अपने प्रियों से अपना आलिंगन शिथिल नहीं कर रही हैं कि कहीं उनकी नींद न टूट जाए। सारी रात रागियों की रतिक्रीड़ाओं को सकौतुक देखता हुआ गृह-नेत्र-सा यह दीपक का प्रकाश धीरे-धीरे क्षीण होता हुआ मानो उनींदा हो हिल रहा है। वारांगनाएँ अलसाई आँखें, बिखरे बाल लिए अपने रमणों के घरों से निकलकर जा रही हैं। कुमुदिनियों ने आंखें बन्द कर लीं, रजनी का भी अन्त हो गया, सारी ताराएँ विनष्ट हो गयीं। इस प्रकार कलत्रप्रेमी चन्द्रमा मानो शोकवश दुर्बल कान्तिहीन हो रहा है।

अभी तक अंशुमाली नेत्र-गोचर नहीं हुए, किन्तु अरुण ने समस्त तिमिर-राशि को तब तक विनष्ट कर दिया—तेजस्वी का अग्रेसर (हरकारा) भी शत्रुच्छेद करने में समर्थ होता है। धीरे-धीरे श्रद्धा से अवनत प्रसन्न मानव को देखते हुए समस्त भुवनतल को अनुगृहीत करने सूर्य उदयगिरि-शिखर से ऊपर उठे।

कुछ समय के लिए प्रवास में रहकर दिग्वधुओं के पाणिग्रहीता पति सूर्य के पुनः पूर्वद्वार से उपस्थित होने पर, मानो चन्द्रमा उनके जारपति की भांति स्रस्तांशुक नीचा होकर पश्चिम द्वार से शीघ्र निकलकर भाग रहा है। अब गगनतल पर अकेले भास्वान् अधिष्ठित हैं। हे वरद प्रभो श्रीकृष्ण, दिननायक आपको सुप्रभात करें।"

प्राभातिक प्रस्थान

प्रभात होते ही प्रस्थान के लिए यदुसेना सन्नद्ध हो गयी। पटहध्वनि की गयी। रथ, अश्व, गजेन्द्र, उष्ट्र आदि सब चल पड़े। ग्रामवधुएं श्रीकृष्ण को देखकर तृप्त नहीं हो पा रही थीं। रास्ते में अनेक पर्वतीय मार्ग से होकर सेना जा रही थी। रास्ते में स्थान-स्थान पर शिविर लगते रहे। इस प्रकार यमुना के तट पर यदुसेना पहुँच गयी और नदी-जल का उपभोग कर उसे वेग के साथ पार कर गयी।

युधिष्ठिर द्वारा अभिनन्दन

इधर धर्मराज युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का इस समय यमुना पार करने का ही

नहीं, अपितु जब से उन्होंने द्वारिका से प्रस्थान किया है तब से दिन-रात का समाचार मिलता रहा। अतः वे भाइयों सहित उनकी अगवानी में नगर से बाहर पहुंचे। श्रीकृष्ण को देखकर ससम्भ्रम रथ से युधिष्ठिर के उतरने के पूर्व ही स्वयं श्रीकृष्ण सविनय उतर पड़े और बुआ के पुत्र धर्मराज को प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने अपने परम प्रिय वासुदेव को बाहुओं में कस लिया और उन्हें सिर पर सूंघा। अन्य यादव-नरेशों का भी इसी प्रकार यथोचित स्वागत किया। अर्जुन के हाथ का सहारा लेकर श्रीकृष्ण रथ पर चढ़े। स्वयं धर्मराज ने अनुरागपूर्ण हो रथ की रास सभाली। भीम चामर डुला रहे थे, अर्जुन श्वेतच्छत्र उठाये हुए थे, तथा नकुल-सहदेव अनुगमन कर रहे थे। इन्द्रप्रस्थ की अंगनाएं अन्य सब कार्य छोड़कर नगर की प्रत्येक सड़क पर श्रीकृष्ण को देखने के लिए एकत्र हो गयीं। वे सुन्दरियां विविध शृंगारचेष्टाओं के साथ श्रीकृष्ण को निहार रही थीं। धीरे-धीरे श्रीकृष्ण मयनिर्मित मणिमयी धर्मराज की यज्ञ-सभा में पहुंचे। यदुनन्दन को पाकर वह पाण्डवकुल अतिशय आनन्दित हुआ। आनन्दातिरेक में धर्मराज ने उस नगर में श्रीकृष्णागमन के उपलक्ष्य में निरन्तर उत्सव का आदेश दे दिया। नन्दनन्दन ने वहां कुरुकुल में बालक से बड़े तक का नाम लेकर कुशल पूछा—सुजन बड़प्पन पाकर भी निरहंकार ही रहते हैं तथा कुछ भूलते नहीं।

साभिनन्दन यज्ञारम्भ

धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का स्वागत करते हुए कहा, "हे विश्वम्भर, यह आपके ही सामर्थ्यातिशय का प्रसाद है, जो यह सम्पूर्ण भारतवर्ष आज मेरे वश में स्थित है। मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। प्रभो, आपकी अनुज्ञा का अनुग्रह चाहता हूँ। आप ही मूल हैं उस धर्ममय वृक्ष के, जो मुझे मिला है। आपकी सन्निधि में मेरा यज्ञ निर्विघ्न सुसम्पन्न होगा। धर्मपूर्वक मुझे जो सम्पत्ति मिली है, उसे उचित पात्रों को देना चाहता हूँ। अथवा पहले आप यजन करें, फिर मैं करूँगा। हे, जगन्नियन्ता, मैं सानुज आपका विधेय हूँ—बताएँ मैं क्या और कैसे करूँ।"

श्रीकृष्ण ने समस्त नरेशों को सुनाते हुए कहा, "आपने अपनी नीति-महिमा से ही समस्त नरेशों को परास्त किया है। आप सुराजा के रहते कौन दूसरा राजसूय यज्ञ कर सकता है! मुझे तो आप यहाँ धनंजय के समान ही अपना आज्ञापात्र समझें। आपके इस यज्ञ में जो नरेश चाकर की भाँति कर्त्तव्य नहीं निभाएगा उसे मेरा यह जगद्बन्धु सुदर्शन कवन्ध-शेष कर देगा।"

और, महाराज युधिष्ठिर सर्वसमृद्ध यज्ञकर्म में प्रवृत्त हो गए। निरन्तर यज्ञ चलने लगा। देवगण वहाँ नित्य आहूत रहते थे, अतः उनकी पत्नियाँ देवपुर में

प्रोषितपतिका बनी थीं। राजाओं से प्राप्त सभी उपहारों को धर्मराज ने दान में ही सत्पात्रों के अधीन कर दिया। धर्मराज ने किसी याचक को अवज्ञा के साथ नहीं देखा। याचना करने पर देने में देर नहीं लगाई। दिया भी तो अल्प नहीं। देकर न आत्मश्लाघा की, और न प्रिय वस्तु भी देकर अनुताप किया। निर्गुण व्यक्ति को भी विमुख न किया—मेघ ऊसर में भी बरसता है। गुणपक्षपाती होकर भी दान के समय धर्मराज याचक को गुणी या निर्गुण नहीं गिनते थे। इस प्रकार यज्ञानुष्ठान के यथाक्रम चलते रहते युधिष्ठिर ने अर्घ्यदान या सदस्यपूजा को लक्ष्य कर भीष्मपितामह से पूछा। भीष्म ने वैसे तो वहाँ आए सभी राजाओं को इसके सर्वथा योग्य बताया, किन्तु उनमें सर्वश्रेष्ठ गुणवत्तम श्रीकृष्ण को निर्दिष्ट किया और उनकी सावतार ईश्वरता का वर्णन भावुक शब्दों में किया। और कहा, "धर्मराज, तुम धन्य हो, जो स्वयं हरि तुम्हारे समक्ष आए हैं। यज्ञ में इन्हीं का परोक्ष में यजन करने वाले यज्ञ करते हैं। तुम साक्षात् इन्हें अर्घ्य देकर संसार से साधुवाद लो।" युधिष्ठिर से अर्घ्य पाकर भी श्रीकृष्ण अनर्घ्य ही रहे। किन्तु,

शिशुपाल का मात्सर्य

यज्ञसभा में श्रीकृष्ण की इस पूजा को चेदिपति शिशुपाल न सह सका। अति निष्ठुर गम्भीर घनगर्जन करता हुआ बोला, "असत्यकर्मवाले युधिष्ठिर, तुमने इस मुरारि की राजा की तरह पूजा की है। तो, यदि तुम्हें यही अर्चनीयतम था तो अन्य नरेशों को क्यों अपमान करने के लिए निमन्त्रित किया था?" फिर उसने भीष्म को भी दुर्वचन कहे और कृष्ण को तो बहुत खरी-खोटी सुनाई। उनके सभी सत्कृत्यों (अवदानों) की भर्त्सना की। किन्तु श्री कृष्ण ने उसकी बातों से कोई विकार प्रकट नहीं किया और न किसी यादव-नरेश ने वहाँ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की—सभी स्वामी की चित्तवृत्ति का अनुवर्तन करते हैं। भीष्म ने क्षुब्ध होकर कहा, "जिसे सभा में मेरा किया यह अच्युतार्चन असह्य है वह अपना धनुष चढ़ाए। मैंने यह चरण सभी नरेशों के शिर पर रखा है।" यह सुनकर शिशुपाल-पक्षीय नरेश अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठे। बाण, द्रुम, वेणुदारी, उत्तमौजा, दन्तवक्र, रुक्मी, सुबल, कालयवन, वसु आदि राजा कोप से बौखला उठे। क्रुद्ध शिशुपाल ने विकराल नाग की भाँति विष वचन उगले और युद्ध का आह्वान देकर वह सभा से बाहर चला गया। युधिष्ठिर उसे न जाने के लिए अनुरोध कर रहे थे। घर आए मौसेरे भाई के प्रति स्वभावतः दाक्षिण्यसम्पन्न पाण्डव क्रुद्ध न हुए। शिशुपाल के पीछे उसके पक्ष के अन्य राजगण भी चले गए। अपने शिविर में पहुँचकर उन्होंने युद्ध का शंख बजाया। क्षण में वह सारा स्थान विचलित तारामण्डल वाले

आकाश के सदृश हो गया। वीरों के प्रस्थान के समय उनके शिविरों में खलबली मच गयी। उनके प्रस्थान के समय तरह-तरह के अपशकुन होने लगे।

शिशुपाल दूतवाक्य

शिशुपाल ने दूत द्वारा परुष एवं कोमल अर्थ वाले श्लिष्ट वचन श्रीकृष्ण के पास कहलाए। श्रीकृष्ण का संकेत पाकर सात्यकि ने उसे मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा, "सभा में श्रीकृष्ण ने गाली देते हुए भी शिशुपाल को कोई उत्तर नहीं दिया। क्यों ? सिंह मेघ-गर्जन को सुनकर प्रतिगर्जन करता है, शृगाल का रोना सुनकर नहीं।" फिर दूत ने अपने स्वामी शिशुपाल का गुण-गौरव गाया—

श्रीकृष्ण-सभाक्षोभ एवं युद्ध-प्रस्थान

जिसे सुनकर श्रीकृष्ण की सभा क्षुब्ध हो उठी। गद, बलराम, उल्मुक, युधाजित, निषध, आहुकि, प्रद्युम्न, पृथु अक्रूर, प्रसेनजित, गवेषण, शिबि, शारण तथा विदूरथ ने अपने क्रोधानुभावों को विभिन्न रूप से व्यक्त किया। किन्तु जैसे वर्षा में क्षुब्ध नदियों के मलिन जल के मिलने से भी सागर का जल विकृत नहीं होता, उसी प्रकार श्रीकृष्ण का मन तनिक भी विकृत न हुआ। उद्धव ने भी अपने मुस्कराते मुख को विकृत न किया। दूत के चले जाने पर श्रीकृष्ण-सेना ने भी युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर प्रस्थान किया। जैसे-जैसे हरिसेना समीप पहुँच रही थी वैसे-वैसे शत्रुसेना, अपनी विवाह-बरात के समीप आते वधू की भाँति, हर्षाकुलित हो रही थी। विपुल धूल उड़ रही थी। देवगण रण में वीरों का पराक्रम देखने आकाश में सकौतुक उपस्थित हो गए। गजों के मदजल से धूलि दब गयी।

तुमुल युद्ध

दोनों सेना-समुद्र गम्भीर गर्जन करते हुए ऐसे मिले मानो पंख कटने के पूर्व सह्य एवं विन्ध्य पर्वत एक ही स्थान पर खड़े होने के लिए भिड़ रहे हों। पैदल से पैदल, अश्व से अश्व, हाथी से हाथी तथा रथस्थ से रथस्थ ऐसे भिड़ गए जैसे प्रेयसी सानुराग प्रिय के प्रत्येक अंग से अपने अंग मिला देती है। भीषण तुमुल युद्ध प्रवृत्त हुआ। वीरों के छिन्न निष्प्राण शरीरावयवों से पटी हुई वह युद्धभूमि ऐसी लग रही थी, मानो सृष्टिकर्त्ता की वह सृष्टिकर्मशाला (वर्कशाप) हो।

द्वन्द्व-युद्ध

उसी प्रसंग में बाणपुत्र वेणुदारि के साथ बलदेव की भिड़न्त हुई। इसी प्रकार शिनि की शाल्व से, उल्मुक की द्रुम से, पृथु की रुक्मी से भिड़न्त हुई।

शिव के कोप से दक्ष की यज्ञशाला की भाँति युद्धभूमि भयानक लग रही थी। युद्ध में श्रीकृष्ण अकेले को शत्रुगण अनेक रूप में देखते हुए स्वयं पंचत्त्व को प्राप्त हो रहे थे।

शिशुपालवध

अन्त में युद्धभूमि में शिशुपाल का सामना श्रीकृष्ण से पड़ गया। श्रीकृष्ण के पराक्रम को न सहता हुआ निर्भीक हो उसने ललकारा और नियति-प्रेरित हो उनकी ओर अपना रथ हाँका। दोनों ओर से विविध भीषण बाण-वर्षा होने लगी। शिशुपाल के सभी अस्त्रों का मुरारि ने बलवान् प्रतिघात किया। अस्त्रों से उन्हें अजेय समझकर शिशुपाल श्रीकृष्ण को अपने वाग्बाणों से व्यथित करने लगा। तब अन्त में श्रीकृष्ण ने, जिससे राहुशिरश्छेदन किया था, उसी कालाग्नि-ज्वाला-भास्वर अपने चक्र से गाली देते उस शिशुपाल का मूर्धच्छेद कर दिया। वहाँ उसी समय शिशुपाल के देह से दिव्य तेज निकला और लोगों के देखते हुए श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

इतिवृत्त का स्रोत तथा माघ की नूतन कल्पना का औचित्य

शिशुपालवध की कथा महाभारत में उल्लिखित है। किन्तु माघ ने इस काव्य में सारी घटना की योजना ही अपनी कल्पना की नींव पर निर्मित की है। प्रथम सर्ग में नारद के आगमन से बीसवें सर्ग की युद्ध से शिशुपालवध की कथा तक की सम्पूर्ण कल्पना माघ की अपनी है। महाभारत में तो "नारदादिमहर्षि तथा श्रीकृष्ण पहले से ही युधिष्ठिर-यज्ञ में उपस्थित रहते हैं और सभा में श्रीकृष्ण को प्रथमार्घ्य दिए जाने से शिशुपाल के अतिक्रुद्ध हो पाण्डवों को, भीष्म को तथा उन्हें दुर्वचन कहने पर, उसके अपराधों की संख्या सौ से अधिक हो जाने पर, श्रीकृष्ण अपने सुदर्शन-चक्र का स्मरण करते हैं और उसके हाथ में आ जाने पर, वहीं शिशुपाल की गर्दन धड़ से अलग कर देते हैं। उसके शरीर से एक दिव्य तेज निकलता है और लोगों के देखते-देखते श्रीकृष्ण में लीन हो जाता है।" किन्तु माघ ने नारदागमन, इन्द्र-सन्देश, उद्धवादिमन्त्रणा, इन्द्रप्रस्थ-गमन, रैवतकवर्णन, सेना-पड़ाव, षड्ऋतु-वर्णन, वन-विहार, रति-क्रीड़ा, प्रभातवर्णन, सेनाप्रस्थान, यमुनोत्तरण तथा युद्धवर्णन सब कुछ अपनी नूतन कल्पना के आधार पर किया है। और ऐसी संगति के साथ कि सारी काल्पनिक घटना वास्तविक ऐतिहासिक ही प्रतीत होती है। कल्पना ऐतिहासिक तथ्य-सी बन गयी। केवल सभाक्षोभ का वृत्तान्त बहुत कुछ महाभारत जैसा है। वस्तुतः यह परिवर्तन ही इसकी महाकाव्यता है। महाभारत के अनुसार इतिवृत्त रखने से तो अपेक्षित रस की काव्यानुरूप निष्पत्ति ही नहीं हो सकती थी। माघ ने रसभावविद् कवि के लिए विभावादिकों की योजना कैसी एवं कितनी महत्त्वपूर्ण होती है, इसे भलीभाँति समझ रखा था। शिशुपाल-वध काव्य की सारी कथा-योजना ही रस-दृष्टि से महाकवि ने की है। उसके विभिन्न प्रसंग किसी-न-किसी रस या भाव से सम्बद्ध हैं।

नारदागमन के समय देवादि-विषय रति से काव्य प्रारम्भ होता है। फिर नारद का समस्त इन्द्र-सन्देश-कथन तथा हिरण्यकशिपु-रावण-शिशुपाल के पराक्रमों एवं अत्याचारों का वर्णन प्रधान वीर-रस के आलम्बन एवं उद्दीपन का कार्य करते

हैं। और द्वितीय सर्ग की मन्त्रणा उसी वीर-रस के 'विवेक' संचारी भाव के रूप में है। इन्द्रप्रस्थ-गमन के व्याज से नायक श्रीकृष्ण के वैभवरूप द्वारिका का वर्णन किया गया है। मार्ग में रैवतक का वर्णन अंगभूत अद्भुत रस का आलम्बन है। रसपरिवर्तन एकश्रुति (Monotony) को दूर करने के लिए आवश्यक भी है और आगे आने वाले श्रृंगार रस के वर्णन के लिए वीर के क्रोध एवं उत्साह मनोवृत्ति में थोड़ा विस्मय-रूप परिवर्तन लाना आवश्यक भी है। पर्वत पर सेना का पड़ाव उसी वक्ष्यमाण श्रृंगार की भूमिका है। षड्ऋतुवर्णन, वन-विहार भी श्रृंगार के उद्दीपन रूप ही हैं—तदनन्तर श्रृंगारसर्वस्व रति-क्रीड़ा चलती है। वस्तुतः श्रृंगार का वर्णन औसत से ज्यादा हो गया है। किन्तु वह "विनेयानुन्मुखीकर्तुं काव्य-शोभार्थमेववा" माना जाएगा। फिर प्रभात-वर्णन में शान्त तथा अद्भुत का प्रसंग आ जाता है, क्योंकि वीर रस पुनः प्रकट होने वाला है। उत्साह के साथ सेना रैवतक से इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पड़ती है और यमुना पार करती है। पाण्डवों द्वारा कृष्ण की अगवानी सख्य अथवा वात्सल्य को व्यक्त करती है और अर्घ्य समर्पित करते तक पाण्डवों एवं भीष्म का वही देवादिविषयक रतिभाव वर्णित हुआ है। शिशुपाल के क्षोभदुर्वचन रौद्र रस को व्यक्त करते हैं, क्योंकि उनमें विवेक नहीं है। और इससे वीर-रस का उद्दीपन होता है। युद्ध का प्रसंग तथा शिशुपाल का वध उसी अंगी वीररस का चरम स्वरूप है, जिसका प्रथम सर्ग में सूत्रपात हुआ था। इस प्रकार अद्भुत, श्रृंगार, शान्त एवं रौद्र रसों का भी सांगोपांग वर्णन हुआ है—यद्यपि वे अंगरूप ही हैं। किन्तु उनके वर्णनप्रसंग से महाकाव्य के लक्षण का पेटा भर जाता है—क्योंकि महाकाव्य में संध्या-सूर्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्त-वासर आदि का वर्णन यथायोग करने का निर्देश किया गया है। बिना इतनी नूतन किंतु अत्यंत संगत प्रतीत होती हुई कल्पना के इसकी महाकाव्यता निष्पन्न ही न होती। भाव के विकास की यही विधा है। भारवि के पर्वतादिवर्णनों में अर्जुन द्रष्टामात्र हैं—उनका मार्ग की अनेक घटनाओं से कोई संबंध नहीं, अतः वे वहाँ खाना-पूरी करने के लिए की गयी-सी प्रतीत होती हैं—किंतु माघ में सभी घटनाएँ श्रीकृष्ण नायक से संबंध रखती हुई घटती हैं। सभी वर्णनों के वे केन्द्र-बिंदु हैं। अतः कोई असम्बद्ध भी नहीं लगतीं। इस योजना को संभवतः माघ ने कविकुलगुरु कालिदास के रघुवंश से सीखी थी। वहाँ कोई प्रसंग असम्बद्ध नहीं होता है।

हाँ, यहाँ अंगी वीररस के काव्य में अंगभूत श्रृंगाररस का कुछ अधिक वर्णन अवश्य हो गया है, किंतु पूरी सेना का श्रृंगार कुछ विस्तार तो चाहेगा ही। उससे वीर का उत्साह फीका नहीं पड़ता।

रसभाव-निष्पत्ति

कवि की काव्य-शक्ति या प्रतिभा का सबसे बड़ा विलास रसभावाभिव्यक्ति है। काव्य-रचना का सबसे बड़ा अनुशासन है रस-परतंत्रता। जिसकी काव्य-योजना जितनी ही अधिक रमणीयता के साथ रस-व्यंजना करती है, वह उतना ही बड़ा महाकवि माना जाता है। माघ की काव्य-सरस्वती रसनिष्यन्दन में पूर्ण सफल हुई है। अतएव उसकी अलोक-सामान्य विशिष्ट प्रतिभा के स्फुरण को प्रमाणित करती है।

आचार्यों ने महाकाव्य में श्रृंगार, वीर शान्त में किसी एक को ही अंगी तथा अन्य सभी रसों को अंगरूप में रखे जाने का निर्देश किया है—(श्रृंगार-वीरशान्तानामेकोऽगीरस इष्यते। अंगानि सर्वेऽपि रसाः। सा० द०)।

वीररस

शिशुपालवध में, जैसा कि उसके नाम से ही सूचित होता है, वीर अंगी अथवा प्रधान रस है। मल्लिनाथ ने भी अपनी सर्वंकषा टीका के प्रारंभ में इस काव्य का प्रधान वीररस ही माना है—'वीरप्रधानोरसः'। और यह ऐसा वीररस है, जिसमें धर्म की स्थापना के लिए नायक निर्मर्याद अधर्मी प्रतिनायक का वध करता है। प्रत्यक्ष रूप से यहाँ कोई प्रधान नायिका नहीं आती।

इस वीर अंगी रस का सूत्रपात्र प्रथमसर्ग से ही होता है। कवि ने नायक श्रीपति को 'शासितुं जगत्' वसुदेव के घर निवास करता हुआ बताया है। नारद ने प्रकृति से पृथक्, विकारों से परे पुरातन पुरुष को अपने ओजस् से जगद्द्रोहियों का विनाश करने के लिए श्रीकृष्ण-रूप में महीतल पर अवतीर्ण बताया है। और मदोद्धत दुर्जनों से पीड़ित विश्व की रक्षा भी तो वे ही कर सकते हैं—भास्कर के अतिरिक्त तमिस्रामलीमस अनन्त नभोमण्डल को भास्वर कौन कर ही सकता है? इस प्रकार वीररस अथवा उत्साह स्थायीभाव का आश्रयभूत यह नायक अनादि परम्परा से 'परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्' तथा 'धर्म-संस्थापनार्थाय' उत्साह एवं शक्ति-सम्पन्न प्रदर्शित किया गया है। फिर प्रतिनायक शिशुपाल भी एक ही जन्म का पापी नहीं है—वह इसके पूर्व अपने हिरण्यकशिपु एवं रावण-रूपों

में बड़े-बड़े दारुण कुकृत्यों के द्वारा जगत् का उत्पीड़न कर चुका है, और उसके लिए विश्वम्भर को नरसिंह एवं राम का अवतार धारण करना पड़ा था। यहाँ हिरण्यकशिपु एवं रावण के उत्पीड़न का वर्णन करना (शि०वध १।४२-६८) वीररस का उद्दीपन माना जाएगा। वही पुराना पापी उतने पुराने दृढ़मूल संस्कारों को लिए अब शिशुपाल रूप में अवतरित हुआ है। यहां शिशुपाल को सहज असीमबलशाली बताकर उसे किसी भी देवता के प्रति कृतज्ञ न होने की बात कही है तथा उच्छृङ्खलता एवं मर्यादाहीनता के साथ उसका जगत् को उत्पीड़ित करना श्रीकृष्ण के क्रोध को, जो उत्साह का अङ्ग है, उद्दीप्त करने के लिए कहा गया है। इसका अनुभाव श्रीकृष्ण की भृकुटियों के वक्र होने के रूप में कवि ने प्रथम सर्गान्त में कहा है—

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुन: क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥

पुन:, द्वितीय सर्ग में उद्धव एवं बलराम के साथ श्रीकृष्ण की मन्त्रणा उसी उत्साह स्थायीभाव के सहायक संचारी विवेक-भाव के रूप में कही गयी है। यह सम्पूर्ण सर्ग उसी भाव को व्यक्त करता है। कवि की राजनीति-सम्बन्धी व्युत्पत्ति तो केवल आनुषङ्गिक रूप से प्रमाणित मानी जाएगी। इस सर्ग की रचना का मुख्य प्रयोजन तो वही है।

तृतीय सर्ग में अपने शस्त्रास्त्रों से लैस अचिन्त्यशक्ति एवं वैभव से सम्पन्न श्रीकृष्ण का अपनी चतुरङ्गिनी सेना के साथ द्वारका से इन्द्रप्रस्थ की ओर सोत्साह एवं ससङ्कल्प प्रस्थान उसी 'उत्साह' भाव से सम्बद्ध चेष्टा या अनुभाव कहा जायगा। द्वारका का वैभव भी श्रीकृष्ण की सम्पन्नता का ही सूचक है।

चतुर्थ से एकादश सर्गों तक प्रसङ्गान्तर उपस्थित होता है। जो अंगभूत रसों एवं भावों का क्षेत्र कहा जाएगा। पुन: द्वादश सर्ग में सेना रैवतक पर्वत पर विश्राम करके आगे प्रस्थान करती है। सेनाङ्गों की विविध चेष्टाएं अनुभावरूप में गृहीत होंगी। किन्तु इतनी बड़ी सेना की भीड़ के चलने पर भी मार्ग के ग्राम आदि में जन-जीवन कहीं उद्विग्न नहीं होने पाता। सागर भी कल्पान्त में वेग से चलता हुआ मर्यादा तोड़ देता है, किन्तु श्रीकृष्ण का सैन्य-सागर ग्रामों से जाता हुआ भी कहीं निर्मर्याद अथवा अव्यवस्थाकारण न हुआ। (शि० वि० १२।३६)। यह सब 'विवेक' का ही व्यंजक माना जाएगा।

फिर पद्रंहवें से बीसवें सर्ग तक वीररस की धारा चलती है।

शिशुपाल का सभा-भवन से ससंभ्रम बाहर जाना तथा उसके शिविर में रणसंनाहप्रवर्तक शङ्खध्वनि का बजना एवं सैनिकों का युद्ध के लिए तैयार होना, अपनी दयिताओं से बिदा लेना आदि सब उसी युद्धोत्साह का उद्दीपन विभाव तथा

अनुभाव माना जाएगा। हाँ, इस उत्साह का आश्रय शिशुपाल होगा, श्रीकृष्ण नहीं। यहां एक बात और स्पष्ट कर देनी है कि यह सारा संघर्ष श्रीकृष्ण एवं शिशुपाल के ही बीच होता है। पाण्डव इसमें भाग नहीं लेते। पाण्डव व्यवहार-कुशल हैं। उनके लिए श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल दोनों सम्बन्धी थे। उन्होंने दोनों को निमन्त्रित किया था। शिशुपाल से अतिशय क्रुद्ध होकर भी वे उस मौसेरे भाई को समझाकर ही शान्त करना चाहते थे—

'गृहमागताय कृपया च कथमपि निसर्गदक्षिणाः।
क्षान्तिमहितमनसो जननीस्वसुरात्मजायचुकुपुर्नपाण्डवाः॥'
(शि०व० १५।६७)

अतएव श्रीकृष्ण के साथ होने वाले शिशुपाल से युद्ध में पाण्डव प्रायः तटस्थ ही रहे। अन्यथा यही महाभारत युद्ध बन जाता।

शिविरों से युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय सैनिकों की प्रेयसियों के भाव-विकारों का भावुक चित्रण हुआ है—"प्रिय का मङ्गल चाहने वाली सुंदरी ने अश्रुजल नहीं गिराये, किन्तु शिथिलबाहु से गिरे कङ्कण को न जान पायी। अशुभ होके ही रहा—

न मुमोच लोचन-जलानिदयितजयमंगलैषिणी।
यातमवनिमवसन्नभुजान्नगलद्विवेदवलयं विलासिनी॥
(शि०व० १५।८५)

यहां रति-भाव युद्धोत्साह का संचारी माना जाएगा। इसी प्रकार प्रिय के चलने पर सुन्दरी के बहुत रोकने पर भी आंसू टपक ही पड़ते हैं। सहज स्नेह युक्त भोले मन के लिए यह उचित ही है, वहाँ दुराव-छिपाव सम्भव ही नहीं—

'ध्रियमाणमप्यगलदश्रुचलतिदयितेनतभ्रुव :।
स्नेहमकृतकरसंदप्यतामिदमेवयुक्तमतिमुग्धचेतसाम्॥ (शि०व० १५।८९)

यहां भी रति-भाव उत्साह का संचारी माना जायगा।

किन्तु ऐसी भी वीरांगना रही जो वीरपति के प्रस्थान के समय परिजनों के आँसू बहाते समय भी धीर बनी रही, क्योंकि वह तो परलोक में पति के साथ जाने को तैयार थी—

समरोन्मुखेनृपगणेऽपि तदनुमरणोद्यतैकधीः।
दीनपरिजनकृताश्रुजलोनभटीजन : स्थिरमनाविचक्लमे॥
(शि०व० १५।९३)

यहाँ उत्साह का अंग धैर्य (धृति) संचारीभाव माना जायेगा।

उधर दूत द्वारा शिशुपाल के भेजे गए कटुवचन को सुनकर भी धीरोदात्त

परमविवेकी श्रीकृष्ण का मन तनिक भी विकृत न हुआ। वर्षा में कलुषित नदियों की जलराशि से मिल कर भी सागर का जल विकृति को नहीं प्राप्त करता।

'समाकुले सदसि तथापि विक्रियां मनोऽगमन्नमुरभिदः परोदितैः।
घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं नहि व्रजतिविकारमम्बुधेः॥'
(शि०व० १७।१८)

और, यदु-सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होने लगती है। सेना प्रस्थान करती है। यह सब अनुभाव कहा जाएगा।

"जैसे-जैसे श्रीकृष्णरूपी वर के आगे चलने वाली नगाड़े की ध्वनि समीप पहुँच रही थी वैसे-वैसे शत्रुसेना विवाह-वधू की भांति हृदय से हर्षाकुल हो रही थी—

'यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत्सहरिवराग्रतःसरः।
तथा तथा हृषितवपुर्मदाकुला द्विषांचमूरजनिजनीवचेतसा॥'
(शि०व० १७।४३)

यह हर्ष भी उसी युद्धोत्साह का संचारी है।

अट्ठारहवें सर्ग से युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और बीसवें सर्ग तक चलता है। युद्ध के उत्साह से चतुरंगिनी सेना के पैदल, घोड़े हाथी तथा रथ चारों अंग शत्रुबल के पैदल, घोड़े, हाथी तथा रथ से ऐसे चिपके जैसे प्रिया अपने अंगों द्वारा सानुराग प्रिय के अंगों से चिपकती है :

'पत्तिः पत्तिं वाहमेयायवाजी नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।
इत्थंसेनावल्लभस्यैव रागादंगेनांगं प्रत्यनीकस्य भेजे॥'
(शि०व० १८।२)

युद्ध का विविधि वर्णन बहुत कुछ रामायण, महाभारत तथा पुराणों की परम्पराओं के अनुसार है और कहीं-कहीं कवि ने कालिदास-भारवि की कल्पनाओं का अनुसरण किया है। इस प्रसंग में भी शृंगार-सम्बन्धी बातें काव्यशोभार्थ ही कही जाएंगी—"काव्यशोभार्थमेव वा।" जैसे—किसी निर्भीक वीर को हाथी ने सूंड़ से लपेटकर जो ऊपर आकाश में फेंका तो वहाँ उसी के लिए आकाश में बैठी स्वर्ग-स्त्रियों को ही मानो भेंट कर दिया—

'हस्तेनाग्रंवीतभीतिं गृहीत्वाकंचिद्व्यालःक्षिप्तवानूर्ध्वमुच्चैः।
आसीनानांव्योम्नितस्यैवहेतोः स्वर्गस्त्रीणामर्पयामासनूनम्॥'
(शि०व० १८।४८)

युद्ध में वीरगति पाए किसी शूर को आलिंगित कर कोई देवांगना शीघ्र ही उसे लेकर सुमेरु पर्वत के किसी लताकुंज में जाती है (जब तक कि उसके वियोग

को सहने में असमर्थ उसकी पत्नी अग्नि में सती होकर नहीं आ जाती।)

'वृत्तं युद्धेशूरमाश्लिष्यकाचिद्रन्तुंतूर्णमेरुकुंजंजगाम।
त्यक्त्वानाग्नौदेहमेतिस्मयावत्पत्नीसद्यस्तद्वियोगासमर्था॥'

(शि०व० १८।६०)

उन्नसीवें सर्ग में महाकवि ने युद्ध के विकट व्यूहों तथा भीषण अन्धाधुंध को परम्परा के अनुसार चित्रालंकारों द्वारा वर्णित करना अधिक उचित समझा है। किन्तु वहां भी स्थान-स्थान पर उच्चकोटि के ध्वनि काव्य का दर्शन हो जाता है—जैसे, उपमालंकार से वस्तु व्यंग्य का प्रसिद्ध उदाहरण—

'आपतन्तममूंदूरा दूरीकृतपराक्रमः। बलोऽवलोकयामासमातंगमिवकेसरी॥'

(शि०व० १९।२)

यहीं का है। शास्त्र-व्युत्पत्ति से विभूषित कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का कहीं-कहीं मनोरम दर्शन इस रणस्थली में भी होता है जैसे—"रण में सुहृद्, स्वामी, पितृव्य, भ्रातृ, मातुल (अर्थतः) निपातित हैं। विद्वानों को वह समरांगण ऐसा लग रहा था मानो पाणिनीयशास्त्र का प्रांगण हो जहाँ ये शब्द निपातित ही सिद्ध होते हैं"—

'निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम्।
पाणिनीयमिवालोकिधीरैस्तत्समराजिरम्॥'

(शि०व० १९।७५)

"शत्रुगण भय के कारण एक ही हरि को द्विधा, त्रिधा तथा चतुर्धा देखते हुए स्वयं पंचत्व को प्राप्त कर रहे थे।"

द्विधा त्रिधा चतुर्धा च तमेकमपिशत्रवः।
पश्यन्तःस्पर्धया सद्यः स्वयं पंचत्वमाययुः॥ १९।११५

बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण का शिशुपाल से साक्षात् युद्ध होता है "युद्ध में श्रीकृष्ण के विक्रमों को न सहता हुआ, ललाट पर तीन रेखाएँ धारण करता हुआ, वक्र भौंहें किए हुए निर्भय हो शिशुपाल ने मुरारि को ललकारा"—

'मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैर्भिदुरभ्रूयुगभीषणंदधानः।
समिताविति विक्रमानमृष्यन् गतभीराह्वतचेदिराण्मुरारिम्॥'

(शि०व० २०।१)

यहां अनुभावों तथा विभावों द्वारा शिशुपाल के युद्धोत्साह की व्यंजना की गई है।

श्रीकृष्ण का रथ अपने भारी पहियों से लाशों को मसलता तथा उनसे

निकलने वाले केसराभिताम्र शोणित से लथपथ पहियों के साथ शिशुपाल की ओर बढ़ा—

'अभिचैद्यमगाद्रथोऽपि शौरेरवनिजागुडकुंकुमाभिताम्रैः ।
गुरुनेमिनिपीडनावदीर्णव्यसुदेहस्रुतशोणितैर्विलिम्पन् ।।'

(शि०व० २०।३)

यहाँ वीभत्स की जुगुप्सा उत्साहभाव का अंग बन रही है।

रुक्मिणी के कुचकेसर से चिह्नित श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल को निहार कर शिशुपाल चिर सुप्त रोष से सहसा भड़क उठा—

'अभिवीक्ष्यविदर्भराजपुत्रीकुचकाश्मीरजचिह्नमच्युतोरः ।
चिरसेवितयापिचेदिराजः सहसावाप रुषा तदैवयोगम् ।।'

(शि०व० २०।६)

यहाँ उचित आलम्बन तथा उद्दीपन से क्रोध भाव व्यक्त होता है।

'अन्त में शिशुपाल ने जब श्रीकृष्ण को परम शुद्ध सीधे लौहबाणों से अजय्य समझ लिया तो वह मर्मवेधी अत्यन्त अशुद्ध कुटिल वाग्बाणों से उन्हें वेधने लगा।'

'शुद्धिगतै रपिपरामृजुभिर्विदित्वाबाणैरजय्यमविघट्टितमर्मभिस्तम् ।
मर्मातिगैरनृजुभिर्नितरामशुद्धैर्वाक्सायकैरथतुतोदतदाविपक्षः ।।'

(शि० व० २०।७७)

इस उद्दीपन से श्रीकृष्ण का क्रोध भड़कता है, और वे तुरन्त अपने दुर्द्धर्ष कालाग्निज्वालाप्रदीप्त चक्र से गाली देते हुए उसके शरीर को कबन्धावशेष कर देते हैं :

'तेनाक्रोशत एवतस्यमुरजित्तत्काललोलानल-
ज्वालापल्लवितेनमूर्धविकलंचक्रेण चक्रे वपुः ।'

(शि०व० २०।७८)

इस प्रकार शत्रुवध कर श्रीकृष्ण का युद्धोत्साह पूर्णता को प्राप्त करता है। और शिशुपाल के शरीर से निकल कर दिव्य तेज जब श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करता है तब तो उस विजय तथा विजयी दोनों का स्वरूप ही दिव्य अतिलौकिक हो जाता है।

शृंगाररस

शिशुपालवध के अंगरसों में सबसे अधिक विस्तार शृंगार रस का हुआ है। वैभवविलास के जीवन से माघ पूर्ण परिचित थे। साथ ही मानव-भावों की प्रक्रिया

का भी उन्होंने अपने प्रतिभा-बल से सूक्ष्मतम निरीक्षण किया था। शि०व० के षष्ठ, सप्तम, अष्टम तथा दशम चार सर्गों में शृंगार की चकाचौंध देखने को मिलती है। वैसे सम्पूर्ण षष्ठ सर्ग में षड्ऋतु-वर्णन उसी शृंगार का उद्दीपन रूप है। ऋतु-जनित-प्रेरणा से प्रिय-प्रेयसी सरभस रमण में प्रवृत्त होते हैं।

नायक-नायिका की चाटु करता हुआ कहता है—'तुम्हारे सुगंधित निःश्वास-मारुत तथा सुधामधुर अधर के प्रति मेरी तरह पिपासु भ्रमर के लिए सुमनों का न गन्ध, न रस तृप्ति दे रहा है, (अतः वह तुम्हारे मुख की ओर आ रहा है)' (शि०व० ६।१२) 'प्रिय के ऐसा कहने पर सुन्दरी अंगना अपने बाहुओं को उठाने से उच्चतर-स्तनों तथा त्रिवली-संबलित उदर-श्री से सुशोभित मानो भ्रमरभय के कारण प्रिय से लिपट जाती है'—

'इतिगदन्तमनन्तरमंगनाभुजयुगोन्नमनोच्चतरस्तनी।
प्रणयिनं रभसादुदरश्रियालिभयालिभयादिवसस्त्रजे॥' (शि०व० ६।१३)

वसन्त ऋतु का उद्दीपन तो इतना अधिक हो जाता है कि जो मानिनी यदु-सुन्दरियां प्रिय के मनुहारों की गिनती ही न थीं वे अब मदनव्यथा से विह्वल होकर स्वयं प्रिय को मनाने लगती हैं—

'अजगणन् गणशःप्रियमग्रतःप्रणतमऽप्यभिमानितयानयाः।
सतिमधावभवन्मदनव्यथाविधुरिताधुरिताःकुकुरस्त्रियः॥'
(शि०व० ६।१५)

'वर्षा की गजश्यामनवाम्बुदघटा को आकाश में उमड़ती देखकर किस सुन्दरी ने प्रिय की कामना से अभिसार न किया ?'—

'गज-कदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसिवीक्ष्यनवाम्बुदमम्बरे।
अभिससारनवल्लभमंगनानचकमेचकमेकरसं रहः॥' (शि०व०६)

इसी प्रकार हेमन्त एवं शिशिर की शीत प्रिय दम्पती को बलात् संयुक्त कराती है (शि०व०६। ५७,६५)।

षड्ऋतु-कुसुम सम्पन्न वन की शोभा का आनन्द लेने यदुगण सपत्नीक जाते हैं, क्योंकि अन्यथा वे मन्मथ के पांच कुसुमबाणों को अकेले-अकेले सहने में तो असमर्थ थे। (शि० व० ७।२)

वन-विहार के लिए सुन्दरियों ने डग भरे और उनके सहज-मनोहर रूप में विलास-वैभव भर गया—आलम्बन-उद्दीपन दोनों एकाश्रय हो गए। (शि० व० ७।३)

दूती द्वारा कुपित नायिका का अनुकूल किया जाना (शि० व० ७।७-११), सखी के अनुरोध से दयिता को जोहते हुए प्रिय का धीरे-धीरे मानो भूमि नापते हुए

वन विहार को जाना (शि० व० ७।१२,१३) प्रियपार्श्व में चलती हुई सुन्दरी के स्तन का कन्दुक की भांति बार-बार प्रिय के अंग संस्पर्श से पुलकित होना (शि० व० ७।१५) किसी सुन्दरी का प्रिय के कन्धे पर दाहिना बाहु रखकर प्रिय द्वारा वामबाहु से आलिंगन होने से पुलकित पीनपयोधर के साथ सविलास जाना (शि० व० ७।१७), किसी का प्रिय के पीछे कन्धे पर दोनों हाथों को रखकर अपने कठिन उन्नत उरोजों के अग्रभाग से प्रिय को धक्का देते हुए जाना (७।१९) आदि रतिविलास के ही विविध पहलू चित्रित हैं।

पुष्पावचय करती सुन्दरी का उत्तरीय खिसक जाता है। उसके उरोज तथा त्रिवली-विभूषित गम्भीरनाभि अनावृत हो जाती हैं। वह प्रिय को नही देखती-सी बड़ी देर तक इसी मुद्रा में हाथ उठाये पुष्पावचय करती रहती है। फिर सखी द्वारा सूचित करने पर कि प्रिय तो सामने ही है, वह भय-परितोष के साथ सचकित सस्मित-मुख पद्मश्री हो नतमुखी जो प्रिय से छिपने की अधीरता-भरी लज्जा का प्रदर्शन करती है उससे प्रिय के हृदय को और भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है—लज्जा स्त्रियों को स्पष्टतः आभूषित करती है—

'अवनतवदनेन्दुरिच्छतीवव्यवधिमधीरतयायदस्थितास्मैं।
अहरत सुतरामतोऽस्यचेतः स्फुटमभिभूषयतिस्त्रियस्त्रपैव ॥'
(शि० व० ७।३८)

सखी द्वारा आते हुए भ्रमर को संकेतित करने पर कोई सुन्दरी भ्रमरभय से आंखें बन्द किए प्रिय की गोद में ही पहुंच जाती है—भीरुता सुन्दरियों का गुण ही माना गया है—

'इतिवदति सखीजनेनिमीलद्द्विगुणितसान्द्रतराक्षिपक्ष्ममाला।
अपतदलिभयेन भर्तुरङ्कं भवतिहि विक्लवतागुणोऽङ्गनानाम् ॥'

मुग्धा नवोढ़ा वधू के मुखकमल को प्रिय ने ऊपर उठाकर बलात् चुम्बन ले लिया। विदग्धसखी बगल में ही नव किसलय तोड़ने में लगी जानकर भी अनदेखी कर कर रही थी—

'मुखकमलमुन्नमय्ययूना यदभिनवोढवधूर्बलादचुम्बि।
तदपि न किलबालपल्लवाग्रग्रहपरयाविविदेविदग्धसख्या ॥'
(शि० व० ७।४९)

यहां 'न किल' द्वारा विदग्धसखी की चेष्टा भी अद्भुत रमणीय व्यक्त होती है।

कोई प्रौढ़ा हर्षोत्सुक्यवती सुन्दरी सखियों के समक्ष ही अपने चापल्य की बिना परवाह किए लता कैसे अपने प्रिय पेड़ से लिपटती है इसका भोलेपन से अभिनय दिखाती हुई प्रिय से लिपट गयी—

'विलसितमनुकुर्वतीपुरस्ताद्धरणिरुहाधिरुहोवधूर्लतायाः।
रमणमृजुतयापुरः सखीनामकलितचापलदोष मालिलिंग ।।'
(शि० व० ७।४६)

कोई सुन्दरी सामने खड़े प्रिय के ऊपर लटकते फूल के गुच्छे को पकड़ने के लिए एक हाथ उठाकर दूसरे से प्रिय के कन्धे का सहारा लेकर अपने पीन पयोधरों से प्रिय के वक्षःस्थल को पूरा ढक देती है—

'सललितमवलम्ब्यपाणिनांसेसहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयाऽन्या।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसिरसादवतस्तरेस्तनाभ्याम् ।।'
(शि० व० ७।४७)

कोई पीनपयोधरा मुग्धा युवती ऊपर लटकते फूलों को चाहती है। प्रिय कहता है कि तुम स्वय तोड़ लो और परिरम्भलोलुप वह प्रेयसी को अपनी दोनों बाहुओं में कस कर ऊपर उठाता है—

'उपरिजतरुजानि याचमानांकुशलतयापरिरम्भलोलुपोऽन्यः।
प्रथितपृथुपयोधरां गृहाणस्वयमितिमुग्धवधूमुदासदोर्भ्याम् ।।'
(शि०व० ७।४९)

और 'कोई नायक सुन्दरी को आगे-आगे फूलों का लोभ देता हुआ 'इससे अच्छा यह' कहता हुआ एकांत में खींच ले जाता है—मदन प्रेमियों से कितनी जल्दबाजी करवाता है—

'इदमिदमितिभूरुहां प्रसूनैर्मुहुरतिलोभयतापुरःपुरोन्या।
अनुरहसमनायि नायकेनत्वरयति रन्तुमहोजनंमनोभूः ।।'
(शि०व० ७।५०)

कोई अतिप्रगल्भा नायिका विजन पाकर प्रिय को बलात् पकड़ती है किन्तु पास में अपनी सपत्नी को देखकर 'कहीं मुझे सस्ती न समझ ले' इस भय से अपसरण करना चाहती है, और तब प्रिय ही उसे पकड़ लेता है, इस प्रकार उसका गौरव बना रह जाता है—

'विजनमिति बलादमुंगृहीत्वाक्षणमथवीक्ष्यविपक्षमन्तिकेऽन्या।
अभिपतितुमनालघुत्वभीते रभवदमुंचतिवल्लभेऽतिगुर्वी ।।'
(शि० व० ७।५१)

इस प्रकार अनेक प्रकार की रतिक्रीड़ाएँ विविधकोटि की नायिकाओं द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। और अन्त में वनविहारजन्य श्रम से सुन्दरियां श्लथांगी हो जाती हैं। उनके विविध श्रमानुभाव दिखाई पड़ते हैं—कोई तन्वंगी सुन्दरी प्रिय

की ओर अपने उन्नत उरोजों को और ऊपर उठाती हुई अपनी बाहुलताओं को परस्पर लपेटती हुई अंग तोड़ती हुई अपने मनोभिलषित आलिंगनाभिलाष को व्यक्त कर रही है—

'अभिमतमभितः कृतांगभंगा कुचयुगमुन्नतिवित्तमुन्नमय्य।
तनुरभिलषितं क्लमच्छलेन व्यवृणुतवेल्लितबाहुवल्लरीका।।'
(शि० व० ७।७२)

रति-श्रम-जन्य स्वेद से सभी सुन्दरियां क्लिन्न हो रही थीं, और प्रिय जब पसीना पोंछने के लिए प्रयत्न करते थे तो उनका शरीर और अधिक खिन्न हो रहा था अतः उन्हें अपने वनविहार-शिथिल शरीर को जलाभिषिक्त करने की इच्छा हुई—

'प्रियकरपरिमार्गादंगनानांयदाभूत्
पुनरधिकतरैव स्वेदतोयोदयश्रीः।
अथवपुरभिषेक्तुंतास्तदाम्भोभिरीषु
र्वनविहरणखेदम्लानमम्लानशोभाः।।' (शि० व० ७।७५)

इस प्रकार बड़ी कुशलता के साथ माघ ने इस सर्गान्त्य श्लोक में अग्रिम सर्ग की वक्ष्यमाण जल-क्रीड़ा का भी संकेत कर दिया है। और इसी प्रकार प्रत्येक सर्ग के अन्त में उन्होंने भावी सर्ग की कथा का संकेत किया है। अस्तु।

जल-विहार भी वनविहार के समान ही संयोग-श्रृंगार का रूप माना जायगा। जलक्रीड़ा के सारे संभार या उद्दीपन उपस्थित थे—जैसे जलक्रीड़ा-यन्त्र, तप्त-स्वर्णश्रृंग, सुगन्धित चन्दनकुंकुमादिद्रव्य, पीन पयोधरों पर आंचल रूप कुसुम्भी उत्तरीय, अंगूरी आसव तथा प्रियतम का साहचर्य—

'श्रृंगाणिद्रुतकनकोज्ज्वलानिगन्धाः
कौसुम्भं पृथुकुचकुम्भसंगिवासः।
मार्द्वीकं प्रियतमसन्निधानमास
न्नारीणामिति जलकेलिसाधनानि।।' (शि० व० ८।३०)

जलक्रीड़ा के कुछ मनोरम दृश्य संयोग श्रृंगार की मंजुल मंजूषा-सदृश हैं, जैसे-कोई नवोढ़ा प्रिय के साथ लाजवश सरोवर में अवगाहन से हिचकती है। तब तक सखियां किनारे से उसे जल में झोंक देती हैं, और वह भयचकित-नयना जल में प्रिय से लिपट जाती है। आपत्काले मर्यादानास्ति—

'नेच्छन्ती सममभुनासरोवगाढुं रोधस्तः प्रतिजलमीरिताः सखीभिः।
आश्लिक्षद्भयचकितेक्षणं नवोढा वोढारं विपदिनदूषिताऽतिभूमिः।।'
(शि०व० ८।३०)

नायक कन्धे तक जल में खड़ा है। मुग्धा नायिका, यह समझकर कि उसके भी कन्धे तक ही जल होगा, निर्भय हो उधर बढ़ती है। प्रिय उसे 'डूब जायगी' अतः लिपटा लेता है—

'तिष्ठन्तं पयसि पुमांसमंसमात्रे तद्घ्नं तदवयतीकिलात्मनोऽपि।
अभ्येतुं सुतनुरभीरियेपमौग्ध्यदाश्लेपि द्रुतममुना निमज्जतीति॥'

कोई मदनपरवशचित्ता सुन्दरी सखी को भिगोने के व्याज से प्रिय युवक की ओर स्नेह-भरी नजर से देखती हुई, मानो मूर्तिमान् प्रणयरसरूप जल से पूर्ण स्नेहांजलि करती है—

'स्निह्यन्ती दृशमपरानिधायतूर्णंमूर्तेनप्रणयरसेनवारिणेव।
कंदर्पप्रवणमनाः सखीसिसिक्षालक्ष्येण प्रतियुवमंजलिंचकार॥'
(शि० व० ८।३)

श्रृंगार में ईर्ष्या का उदय कहीं न कहीं अवश्य होना चाहिए, जैसे मधुर भोजन में चर्परी चटनी का। प्रिय ने प्रेम से प्रिया के उरःस्थल पर जल का छींटा मारा। सुन्दरी के कठिन कुचों पर पककर मानो उसके संताप को लेकर उछली जलबूँदों ने समीपस्थ उसकी सौत को जला दिया—

'प्रेम्णोरःप्रणयिनिर्सिचतिप्रियायाः
सन्तापं नवजलविप्रुषो गृहीत्वा।
उद्भूताः कठिनकुचस्थलाभिघाता-
दासन्नांभृशमपरांगनामधाक्षुः॥' (शि० व० ८।४०)

जल-विहार तो संयोग-श्रृंगार का एक पहलू है। "स्नान से निर्मल शरीर, अधरों पर ताम्बूल की रक्तिमा, हल्का महीन परिधान और एकान्त" विलासिनियों को, यदि मदनभाव है, तो यही नेपथ्य (साजश्रृंगार) बन जाता है—

'स्वच्छाम्भः स्नपनविधौतमंगमोष्ठस्ताम्बूलद्युति विशदोविलासिनीनाम्।
वासश्चप्रतनुविविक्तमस्त्वितीयानाकल्पोयदिकुसुमेषुणा न शून्यः॥'
(शि०व० ८।७०)

और उधर भाव-भरे यादव युवकों को भी स्नानाद्यलंकृतदेह देखकर भगवान् सूर्यदेव ने भी पश्चिमपयोधि की लहरों में अवगाहन करना चाहा। और सूर्यास्तमय हो गया। अन्धकार छाने लगा। और चन्द्रोदय होने लगा। रतिक्रीड़ा के लिए अधीर सुन्दरियों ने दूतियां भेजनी प्रारम्भ कर दीं। कोई दूती से कहती है—"दूति, उनसे जाकर ऐसी कुशलता से बात करना कि मेरी जिसमें लघुता भी न मानी जाय, और वे मेरे ऊपर कृपा भी करें—"

'न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां करुणां यथा चकुरुते स मयि ।
निपुणं तथैनमुपगम्यवदेरभिदूति काचिदितिसंदिदिशे ॥'
(शि०व० ६।५६)

यह कलहान्तरिता नायिका है ।

कोई कलहान्तरिता सुन्दरी तो दूती को भेजते समय दूती से पूछने पर भी लाजवश कुछ सन्देश ही नहीं कह पा रही है, केवल अनंगशरों से कृशित अपने शरीर को ही रह-रहकर देखती है—

'ननुसंदिशेतिसुदृशोदितयात्रपयानकिंचन किलाभिदधे ।
निजमैक्षिमन्दमनिशं निशितैः कृशितंशरीरमशरीरशरैः ॥'
(शि०व० ६।६१)

और उन अत्यन्त विदग्ध प्रगल्भवाक् दूतियों से प्राप्त प्रेम-सन्देश पर प्रियजन पूर्ण श्रद्धा कर लेते हैं—

'उदितं प्रियांप्रतिसहार्दमितिश्रदधीयतप्रियतमेन वचः ।'

औरपरिणामतः पुनः संयोग का दौर चल पड़ता है। प्रिय के आने पर त्वरा में आसन से खड़ी होते समय सुन्दरी के सुवर्णशिला-सदृश विशाल जघन-स्थल से वसन स्खलित हो जाता है। सुन्दरी नीवी हाथ से पकड़े उसे पुनः ढक-लेती है।

'कररुद्धनीविदयितोपगतौगलितंत्वराविरहितासनया ।
क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे ॥' (शि० व० ६।७५)

प्रिय ने पीछे से आकर सुन्दरी की आँखें बन्द कर लीं और पूछा—बोलो, कौन है? सुन्दरी मुँह से तो कुछ नहीं बोलती केवल (प्रिय-स्पर्श एवं वचन-श्रवण से) रोमांचों से प्रिय को बता देती है—

'पिदधानमन्वगुपगम्यदृशौब्रुवतेजनाय वद कोऽयमिति ।
अभिधातुमध्यवससौ न गिरा पुलकैः प्रियं नववधूर्न्यगदत् ॥'
(शि०व० ६।७६)

इस प्रकार चन्द्ररश्मियों ने सुन्दरियों का मान भंग कर उन्हें प्रिय-मिलन के लिए अधीर किए ही था कि लज्जाविघ्न को दूर करने में कुशल मन्मथश्रीविलासों को विजृम्भित करने वाली मदिरा रतिक्रीड़ा का आचार्यत्व करने लगी—

'आचार्यत्वं रतिषु विलसन्मन्मथश्रीविलासा
ह्रीप्रत्यूहप्रशमकुशला : शीधवश्चक्रुरासाम् ॥' (शि०व० ६।८७)

और मधुपान के साथ दशमसर्ग का प्रारम्भ हो जाता है। मैरेय ने सुन्दरियों से सब

तरह के खेल खिलवाए। हँसी में विलास, वचनों में चतुराई, आँखों में विशिष्ट विकार मुग्धाओं को भी आ गया तो प्रौढ़ाओं का तो कहना ही क्या ?

'हावहारि हसितं वचनानांकौशलं दृशिविकारविशेषा: ।
चक्रिरे भृशमृजोरपिवध्वा: कामिनेवतरुणेन मदेन ।।'

(शि०व० १०।१३)

उन अंगनाओं के शरीर को सहज सौन्दर्य विभूषित किए था। सौन्दर्य भी यौवन से सज रहा था, यौवन को मदनश्री सुशोभित कर रही थी, मदनश्री को मद, और मद को प्रिय-संगम अलंकृत कर रहा था—

'चारुतावपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोग: ।
तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तां मदोदयितसंगमभूप: ।।'

(शि०व० १०।३३)

सुरत-क्रीड़ा का बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों रूप अत्यन्त मनोरम तथा सूक्ष्मविवेचित है। प्रेक्षण, चुम्बन, आलिंगन आदि बाह्य सुरत है तथा परिरम्भणादि क्रियाभिनिवृत्ति आभ्यन्तर है। माघ ने दोनों का स्वाभाविक वर्णन किया है।

प्रिय के गाढालिंगन से सुन्दरी का सारा शरीर स्वेदार्द्र हो जाता है इतना कि वस्त्र भीग जाते हैं—

'स्नेहनिर्भरमधत्तवधूनामार्द्रतांवपुरसंशयमन्त: ।
यूनिगाढपरिरम्भिणि वस्त्रक्नोपमम्बुववृषेमदनेन ।।'

(शि०व० १०।४६)

प्रिय के उत्तरीयापकर्षण करने पर लज्जावश सुन्दरी अपने कुच-मण्डल को प्रिय के ही वक्षस्थल से ढक लेती है—प्रिय से गाढलिपट जाती है—

'उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम् ।
आवरिष्टविकटेनविवोढुर्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या ।।'

(शि०व० १०।४१)

प्रिय के अधरबिम्बदशन के समय सुन्दरी के हाथ की चूड़ियाँ खनक उठती हैं—मानो उन्हें पीड़ा हो रही थी। (शि०व० १०।५६)। कोई युवक भावावेश में अधरपल्लव छोड़कर सुन्दरी की आँखों का ही चुम्बन ले रहा था :

'ओष्ठपल्लवमपास्यमुहूर्तं सुभ्रुव: सरसमक्षिचुचुम्बे ।'

(शि०व० १०।५४)

आभ्यन्तर सुरत के अनेक रहस्यमय पक्षों का चित्रण माघ की सरस सहृदयता ने किया है—प्रिय का हाथ सुन्दरी का नीवी-वस्त्र हटाने में लगा है। सुन्दरी के दोनों हाथ उसे मना कर रहे हैं। मानों इन हाथों के कलह का निवारण करने के लिए सुन्दरी की चूड़ियाँ तथा काँची खनक रही हैं—

'अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्योषितश्चकरयोः कलहस्य।
वारणामिवविधातुमभीक्ष्णं कक्ष्यया च वलयैश्चशिशिञ्जे॥'

(शि०व० १०।६२)

सुरत के समय अंगनाओं के कुछ परस्पर विरोधी भाव देखे जाते हैं—"रतिराग उद्दाम रहता है, फिर भी वे उदासीनता ही दिखाती हैं; प्रिय को यथेष्ट करने के लिए अपने शरीर को समर्पित करके भी वक्रता ही दिखातीं हैं, सुरत-सम्बन्धी मनोहारी प्रागल्भ्य रखते हुए भी लज्जा का प्रदर्शन करती हैं।"

'धैर्यउल्बणमनोभवभावावामतां च वपुरर्पितवत्यः।
व्रीडितं ललितसौरतधाष्ट्र्यास्तेनिरेऽभिरुचितेषु तरुण्यः॥'

(शि०व० १०।१८)

इसी प्रकार प्रिय की वाञ्छा का विरोध न कर नीवी-विमोक्ष के समय प्रिय के हाथ का रोकना, मन्द मधुर हासमिश्रित तर्जना, तथा अधरपीड़न-स्तन-मर्दनादि में सुख मिलने पर भी शुष्क अथवा कृत्रिम रोना सुन्दरी करती ही है" :

'पाणिरोधमविरोधितवाञ्छं भर्त्सनाश्मचधुरस्मितगर्भाः।
कामिनः स्म कुरुते करभोरूर्हारि शुष्करुदितं च सुखेऽपि॥ (शि०व० १०।६९)

साहित्यशास्त्र की भाषा में इसे कुट्टमित कहते हैं :

(केशाधरादिग्रहणे मोदमानेऽपि मानसे। दुःखितेव बहिः कुप्येद्यत्र कुट्टमितं-हितत्।) सुरतवेला में युवती के सीत्कार, मणित (मणितंरतिकूजितम्)। करुण-वचन, स्निग्ध आलाप, निषेधवचन हास, तथा भूषणशिञ्जन, काम-सूत्र के पद बन रहे थे :

'सीत्कृतानि मणितं करुणोक्तिः स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि।
हासभूषणखाश्चरमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः॥'

(शि०व० १०।७५)

उस रति-वेला में प्रिय को जो-जो रुचता था सुन्दरियाँ वही-वही करती थीं। पुरुषों के अनुकूल आचरणकर तरुणियाँ उनके हृदय को वश में कर लेती हैं—

'यद्यदेवरुरुचे रुचिरेभ्यः सुभ्रुवो रहसितत्तदकुर्वन्।
आनुकूलितयाहिनराणामाक्षिपन्ति हृदयानितरुण्यः॥' (शि०व० १०।७६)

सुरत-विलास की सूक्ष्मताओं का उद्‌घाटन करने में माघ ने विशेष रुचि तथा तन्मयता दिखायी है।

सुरतिक्रीड़ा में विशेषत: विपरीत-रति में मदनरस की अतिभूमि या पराकाष्ठा पर पहुँचने के बाद सुन्दरियों को पीन उरोज दुर्वह हो रहे हैं। श्रमजल से आर्द्र ललाट पर लम्बे-काले केश इधर-उधर बिखरे-चिपके हुए हैं। अब वे थक गयी हैं—

'प्राप्य मन्मथरसादतिभूमि दुर्वहस्तनभरा : सुरतस्य।
शश्रमु:श्रमजलार्द्रललाटश्लिष्टकेशमसितायतकेश्य : ।।'

(शि०व० १०।८०)

और अब सुरत के अवसान के चित्र दर्शनीय हैं। "सुन्दरियों ने सुरत के समय प्रियतम का संगम पाकर जिस लज्जारूपी सखी को छोड़ दिया था, अब रतान्त में उस सखी के विरह को न सह सकीं और उससे तुरन्त मिल गयीं—रतान्त में पुनर्लज्जा प्रकट हो गयी।"

'संगताभिरुचितैश्चलितापिप्रागमुच्यतचिरेणसखीव।
भूयएवसमगंस्त रतान्ते ह्रीर्वधूभिरसहाविरहस्य ।।'

(शि०व० १०।८१)

सुरतावसान में सुन्दरियों की नजरें लज्जा से अधीर हो रही थीं। हड़बड़ी के साथ दुकूल से शरीर ढाका जा रहा था। वह एक दर्शनीय ही क्षण था—

'प्रेक्षणीयकमिव क्षणमासन् ह्रीविभंगुरविलोचनपाता:।
संभ्रमद्रुतगृहीतदुकूलच्छाद्यमानवपुप: सुरतान्ता : ।।'

(शि०व० १०।८२)

प्रिय ने एक सुरतावसान में विश्राम के लिए जो प्रिया का आलिंगन किया वही दूसरे सुरत का आदि बन गया—

'विश्रमार्थमुपगूढमजस्रं यत्प्रियै : प्रथमरत्यवसाने।
योषितामुदितमन्मथमादौ तद्‌द्वितीयसुरतस्यबभूव ।।'

(शि०व० १०।८८)

और सारी रात यही क्रम चलता रहा। जिसे देख कर रजनी का भी चन्द्रमुख लज्जा से अवनत हो जाता है और प्रभात वेला आ जाती है—

'अभजतपरिवृत्ति साथपर्यस्तहस्ता
रजनिरवनतेन्दुर्लज्जयाधोमुखीव ।।

(शि०व० १०।९१)

श्रृंगार रस के प्रसंग में यहां एक बात अवधेय है कि शिशुपालवध में संयोग श्रृंगार का ही चित्रण हुआ है। विप्रलम्भ के लिए अवसर ही नहीं था। केवल ईर्ष्या-मानजन्य विप्रलम्भ के कुछ छुटपुटे दृश्य पुष्पावचय, जलविहार, सुरत समय में कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाते हैं । यद्यपि वहाँ भी मान टिकता नहीं जैसे—वनविहार के प्रसंग में कोई खण्डिता नायिका पल्लवपुष्प का उपहार देने वाले अपराधी कान्त की भर्त्सना करती हुई कहती है—

'हम तुम्हारे इस दान के योग्य नहीं हैं। जो तुम्हें एकान्त में पीती और रखवाली करती है, उसी को जाकर इसे दो। दोनों समानधर्मा का देर तक संयोग हो—

'न खलु वयममुष्यदानयोग्या : पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् ।
व्रजविटपममुंददस्व, तस्यै भवतु यतःसदृशोश्चिराय योगः ।।'
(शि०व० ७।५३)

'हे धूर्त, मेरे कानों में व्यर्थ में पेड़ के पत्तों और फूलों की कर्णपूर लगाने से क्या लाभ ! लोक-प्रसिद्ध तुम्हारे अप्रिय वचनों से तो पहले से ये कर्ण पूर ही हैं।' (७।५४) ऐसा कहकर सुन्दरी ने कान में पहिने नीलकमल से तथा नेत्रकटाक्ष से प्रिय को कोप से घायल किया (७।५६) फिर प्रदोष-वर्णन-प्रसंग में—प्रिय ने दूसरी युवती का नाम ले लिया। फिर क्या था। सुन्दरी भड़क उठती है—'मैं आपकी आँखों के अति समीप हूँ—अतः आप मुझे नहीं देख पाते हैं, और उस प्रियतमा को जो आपके दिल में छिपी है चारों ओर देखते हैं'—

'न विभावयत्यनिशमक्षिगतामपिमांभवानतिसमीपतया ।
हृदयस्थितामपि पुनः परितः कथमीक्षते बहिरभीष्टतया ।।'
(शि०व० ६।८१)

ऐसा कहकर जो मानवती सुन्दरी चलना चाही तो दोनों की आँखें चार हो गईं। फिर सुन्दरी के मुख-कमल पर मुस्कान की रेखा दौड़ गई और प्रिय ने प्रेयसी का हाथ पकड़ लिया। मान रफ़ूचक्कर हो गया।

'इति गन्तुमिच्छुमभिधायपुरः क्षणदृष्टिपातविकसद्वदनाम् ।
स्वकरावलम्बनविमुक्तगलत्कलकांचि कांचिदरुणत्तरुणः ।।'
(शि० व० ६।८२)

पुनः सारी रात अन्यनायिका के संग बिताकर प्रातः उपस्थित होने वाले धृष्ट नायक की भर्त्सना करती हुई ईर्ष्याकषायिताखण्डिता नायिका कहती है—'तुम अपने शरीर पर उस नायिका के नूतन नखचिह्नों को वस्त्रांचल से ढक रहे हो,

उसके दन्तों से क्षत अपने अधर को हाथ से छिपा रहे हो, किन्तु चारों ओर अन्य-स्त्री-संसर्ग की सूचना देते हुए फैलने वाला यह नूतन परिमल सौरभ भला किस उपाय से छिपाया जा सकता है?'

'नवनखपदमंगं गोपयस्यंशुकेन
स्थगयसिपुनरोष्ठंपाणिना दन्तदष्टम्।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसंगशंसीविसर्प
न्नवपरिमलगन्धःकेनशक्योवरीतुम्
(शि०व० ११।३४)

कोई नायिका अपने कान्त को अन्य-नायिका के नख-दर्शन से रात में चिह्नित देखकर प्रातः ईर्ष्या-कोप से सशंक हो उठती है। इस पर विलासी उसे आश्वासन देते हुए सानुनय कहता है कि क्या तुम्हें याद नहीं कि तुम्हीं ने तो मधु के नशे में ये दिये थे—

करज-दशन-चिह्नं नैशमंगेऽन्यनारी
जनितमिति सरोषामीर्ष्ययाशंकमानाम्।
स्मरसि न खलुदत्तंमत्तयैतत्त्वयैव
स्त्रियमनुनयतीत्थंव्रीडमानांविलासी।
(शि०व० ११।३७)

जब किसी मुग्धा नायिका को दिन में मदिरा का नशा उतरने पर पता चलता है कि मैं नशे में प्रिय के सम्मुख बहुत बोल गई और प्रौढ़ नायिका की भाँति उसकी बड़ी चाटुकारिता भी की, तो वह लज्जित हो जाती है—

'वहुजगद पुरस्तात्तस्यमत्ताकिलाहं
चकर च किल चाटु प्रौढयोपिद्वदस्य।
विदितमितिसखीभ्योरात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाह्निव्रीडितंमुग्धवध्वा।
(शि०व० ११।२६)

श्रीकृष्ण के प्रति शृंगार

यद्यपि इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण वीर रस के प्रधान रूप से आश्रय हैं, किन्तु अन्य अंगभूत भावों के भी आश्रय या आलम्बन बने हैं। जैसे द्वारिका से प्रस्थान के समय उनके तैयार होने पर उनकी सुन्दरी ललनाएं भी उनके साथ चलने को उनके चारों ओर आ गईं—

"उस समय प्रिय जिस-जिस की ओर दृष्टि करता था वह-वह तो लज्जा साध्वस से नम्रमुखी हो जाती थी, किन्तु अन्य सभी निःशंक हो ईर्ष्याभाव से उन (प्रिय) की ओर कटाक्ष प्रहार कर रही थीं"—

'यां यां प्रियःप्रैक्षतकातराक्षी सासाह्रियानम्रमुखीबभूव ।
निःशंकमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरेजघ्नुरमुंकटाक्षैः ॥' ३।१६

और फिर जब श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ नगरी में पाण्डवों के साथ प्रवेश करते हैं तो उन्हें देखने उस नगरी की ललनाओं की त्वरा-सम्भ्रमनिर्भरचेष्टायें उसी शृंगार-भाव की अभिव्यक्ति रूप मानी जायेंगी। (१३।३१-४६) उदाहरणार्थ एक-दो चित्र पर्याप्त होंगे—

'त्वरा में हार के स्थान पर मेखला, केशों में कर्णपूर, उत्तरीय के स्थान पर अधोवस्त्र तथा अधोवस्त्र के स्थान पर उत्तरीय, एवं कुण्डलों को कंकण के स्थान पर पहिन कर सुन्दरियां कृष्ण को देखने दौड़ीं।"

रभसेनहारपददत्तकांचयः प्रतिमूर्धजं विहितकर्णपूरकाः ।
परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाःस्त्रियः ॥
(शि० व० १३।३२)

इसी प्रसंग में माघ कवि ने कुछ अपने भी कृष्णविषयक उद्‌गार कह दिये हैं। काव्य में कवि की आत्माभिव्यक्ति भी तो रहती है। 'वे नितम्बिनियां दुःखी थीं कि कृष्ण चले जा रहे हैं और हमारी आखें प्यासी ही रह गयीं। उन्हें मालूम नहीं कि जो उन श्रीकृष्ण को निरन्तर देखता रहता है वह भी तो कभी वितृष्ण नहीं होता'—

'अभियाति नः सतृष एष चक्षुषोर्हरिरित्यखिद्यतनितम्बिनीजनः ।
न विवेद यः सततमेनमीक्षते न वितृष्णतां व्रजति खल्वसावपि' ॥
(शि० व० १३।४६)

हास्यरस

अंगरसों में हास्य का अतिस्वल्प दर्शन होता है। माघकवि स्वभाव से गम्भीर-वृत्ति के रहे। उनके इस काव्यकथानक में हास्य का कोई विशेष प्रसंग नहीं आया। किन्तु कहीं-कहीं स्वभाव वर्णन मे हँसी की सामग्री जुट ही गयी है। पंचम सर्ग में रैवतक पर विश्राम करने को सेना फैल रही है। वहीं हाथी के डर से गर्दभ ऐसा उछलने लगता कि उस पर आरूढ़ महिला बेपर्द गिर ही जाती है। गधे की उछल-कूद ही पर्याप्त हास्यजनक होती है, फिर उस पर से किसी का गिरना तो

हंसी का फौव्वारा ही चला देगा—

'त्रस्त: समस्तजनहासकर: करेणो
स्तावत्खर: प्रखरमुल्ललयांचकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्ब-
विस्रस्तवस्त्रमवरोधवधू: पपात ॥'

(शि० व० ५।७)

'कोई अश्व रस्सी-सहित बन्धन-कील उखाड के दूसरे अश्व के पीछे अश्वा समझ कर ऐसे दर्प के साथ दौड़ा कि मनुष्य द्वारा प्रयत्न करने पर भी दुर्ग्रह रहा और सारी कटक में उसने खलबली मचा दी।

'उत्खायदर्पचलितेनसहैवरज्ज्वा
कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेणतूर्ण
मश्वेतिविद्रुतमनुद्रवताऽश्वमन्यम् ॥'

(शि० व० ५।५६)

फिर, रैवतक पर विश्राम के पश्चात् जब सेना आगे प्रस्थान करती है, तब 'किसी दुर्दान्त घोड़े पर सवार ज्योंही चढ़ता है, वह उसे फेंककर सरपट भाग लेता है और घोड़े की जीन उसके पेट के नीचे लटकती हुई उसे और भड़का रही है। लोगों की हंसी का अच्छा मसाला मिल जाता है—

दुर्दान्तमुत्कृत्यनिरस्तसादिनंसहासहाकारमलोकयज्जन:।
पर्याणत: स्रस्तमुरोविलम्बिनस्तुरंगमप्रद्रुतमेकयादिशा ॥'

(शि०व० १२।२२)

इसी प्रकार हथिनी के सूत्कार से त्रस्त, दो खच्चर व्याकुल वाहक द्वारा लगाम छोड़ दिये जाने पर अवरोधांगनाओं (राजमहिलाओं) को फेंक कर बेरास्ते दौड़ते हुए उस स्त्री-रथ को ही तोड़ डालते हैं। (शि० व० १२।२४)

वस्तुत. हास्य के प्रसंग ही प्राय: बहुत कम आये हैं।

रौद्र रस

वीररस का रौद्र के क्रोध स्थायी भाव के साथ प्राय: साहचर्य स्वाभाविक रहता है। क्रोध से कभी-कभी उत्साह बढ़ता है। जगद्द्रोही शिशुपाल के प्रति श्रीकृष्ण का वह क्रोध ही था, जिसने उसके वध का उत्साह दिया। प्रबन्धों में प्रतिनायक में

विवेकहीन मोहमय क्रोध ही दिखाया जाता है। माघ ने युधिष्ठिर-सभा में कृष्ण-पूजा पर क्रुद्ध शिशुपाल के क्रोध का बड़ा सजीव चित्रण किया है।

ज्वर की तरह शिशुपाल का क्रोध बढ़ रहा था। राजसूययज्ञ-सभा में श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर द्वारा दिया गया प्रथम सम्मान शिशुपाल से न सहा गया। उसे श्रीकृष्ण से वैरभाव तो पहिले से ही था अब और उद्दीप्त हो गया। उसके क्रोध में समस्त भावों के अनुभावों का बड़ा सटीक चित्रण हुआ है—'उसने क्रोधातिरेक में धीरे-धीरे अपना सिर हिलाया। वह रोष से आंखों में आंसू, विशाल कपोलों पर पसीने की धार तथा हाथों में स्वेदकणिका लिए मदस्रावी कुंजर की भांति लग रहा था। उसके सारे शरीर पर पसीने की बूंदें उमड़ आयीं। वह लड़खड़ा कर उठा और कन्धे के धक्के से उसने सभा-स्तम्भ को हिला दिया।

(शि० व० १५।-३६)

फिर सभा-भवन को प्रतिध्वनित करता हुआ अतिनिष्ठुर कठोर गंभीररव करने लगा। 'कुन्ती-पुत्रो, यदि तुम लोगों को यह शौरि ही पूज्यतम था, तो क्या अपमान करने के ही लिए सारे भूपतियों को बुलाया था ? (शि० व० १५।१८)' फिर भीष्म को दुर्वचन सुनाता हुआ कहता है—'समुन्नत राजगण को त्याग कर नीचवृत्त निम्न कृष्ण पर जो तुमने अपनी अनुरक्ति दिखाई उससे सिद्ध होता है कि तुम वस्तुतः निम्नगापुत्र हो!' (शि० व० १५।२१)। इसी तरह श्रीकृष्ण को उसने अनेक कटु दुर्वचन सुनाये। अन्त में पाण्डवों, भीष्म तथा श्रीकृष्ण सबको कटुतम परुष वचन कहते हुए ललकारता है—'हे राजाओ, तुम लोग इन पांचों दुसाधों (जारजों) तथा इस बूढ़ी क्षत्रिय-कन्या (भीष्म) के साथ ही इस टुकड़-खोर (चाकर) को क्यों नहीं ख़तम कर देते ?' (शि० व० १५।६३)। शिशुपाल की ये सारी बातें उसके क्रोध-भाव के अनुभाव रूप में हैं।

फिर सम्पूर्ण षोडशसर्ग में शिशुपाल द्वारा भेजे गए प्रतिभानवान् दूत की श्लिष्ट व्यंग्यमयी वाणी सुनने को मिलती है। वह मीठे ढंग से अतिशय कटुवचन कहता है। यद्यपि सात्यकि ने उसे मुंहतोड़ उत्तर दिए, किन्तु उसकी धृष्टता बढ़ती ही जाती है। और अन्त में, वह यहां तक कह बैठता है कि 'वह (शिशुपाल) आपको युद्ध में विनष्ट कर आपकी रोती अंगनाओं पर दयाकर उनके शिशुओं के प्रति अपनी शिशुपालता को सार्थक करेगा।'

'विनिहत्यभवन्तमूर्जितश्रीर्युधिसद्यः शिशुपालतांयथार्थाम्
रुदतांभवदंगनागणानांकरुणान्तःकरणः करिष्यतेऽसौ।'

(शि० व० १६।८५)

दूत के सारे वचन श्रीकृष्ण के क्रोध को उद्दीप्त करने वाले हैं। और वह क्रोध युद्धोत्साह अथवा वीररस का अंग है।

दूत के कटुवचन ने धधकती आग में घी का काम किया। सारी यदु-सभा विक्षुब्ध हो उठी और उसकी क्रोधमयी विविध प्रतिक्रियाएं हुईं।

सभासद राजगण क्रोध से लाल हो गए, उनके शरीर से पसीना बहने लगा। वे ताल ठोंकने लगे, और बार-बार दांतों से होंठ चबाने लगे—

'सरागयास्रुतघनघर्मतोयया कराहतिध्वनितपृथूरुपीठया।
मुहुर्मुहुर्दशनविखण्डितोष्ठया रुषा नृपाः प्रियतमयेवभेजिरे॥'
(१७।२)॥

इसी प्रकार विशिष्ट यदुपुंगवों के क्रोध का अत्यन्त स्वाभाविक अनुभाव वर्णित हुआ है। गद ने इतने जोर से कन्धे पर ताल मारी कि उनका अंगद (केयूर) विशीर्ण हो गया, और उसमें जटिल पद्मरागमणियां बिखर पड़ीं, मानो उनकी क्रोधाग्नि की चिनगारियां फूट पड़ी हों—

'अलक्ष्यतक्षणदलितांगदेगदेकरोदरप्रहितनिजांसधामनि।
समुल्लसच्छकलितपाटलोपलैः स्फुलिंगवान्स्फुटमिवकोपपावकः॥'
(शि० व० १७।३)

प्रसेनजित् अपनी मदकलुषित आंखों को घुमाते हुए हाथ से भयंकर भूतल पीटते हुए क्रोध से अत्यन्त लालरंग हो गए थे, मानो गौरिकधातु से रक्तगज हो—

'विवर्तयन्मदकलुषी कृतेदृशौ
कराहतिक्षितिकृतभैरवारवः।
क्रुधादधत्तनुमतिलोहिनीमभूत्
प्रसेनजिद् गदइव गौरिकारुणः॥' (१७।१३)

भयानक रस

वीररसमय काव्य में, जहाँ युद्ध का प्रसंग आता है, वहाँ प्रायः भयानक की भी चर्चा आती ही है। शिशुपालवध के प्रथमसर्ग में हिरणकशिपु असुर द्वारा देवताओं के मन में प्रथम बार भय संचार करने का उल्लेख हुआ है—

'भयस्यपूर्वावतरस्तरस्विनामनग्मुयेनद्युसदांन्यधीयत।'

वह देवताओं के भय का प्रथम आलम्बन हुआ। उसके भय से उन्होंने अपने पुरों को दुर्ग बनाया, शस्त्रों को तीक्ष्ण किया, सैनिकों को शूर बनाया तथा कवचों को दुर्भेद किया। इसके पहिले ये सभी वस्तुयें देवताओं के पास केवल शोभा के लिए थीं—

'पुराणि दुर्गाणिनिशातमायुधं
बलानिशूराणि घनाश्चकंचुका:।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां
गणैर्यमाशंक्यतदादि चक्रिरे॥' शि०व० १।४५

'वह श्री का आश्रयभूत दैत्य स्वेच्छा से जिस दिशा की ओर चलता था उसी दिशा को देवगण तीनों सन्ध्या के समय नतमुकुट नमस्कार किया करते थे'—

'ससंचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां
यदृच्छयाशिश्रियदाश्रय : श्रिय:।
अकारितस्यै मुकुटोपलस्खल
त्करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशेनम॥' १।४६

पुन: उसी के रावण अवतार में देवताओं के भय का सजीव चित्रण हुआ है—रावण के भय से इन्द्र रण से भागतेसमय अपने ऐरावत हाथी तथा उच्चै:श्रवा घोड़े की तेज़ चाल की ही प्रशंसा करते थे—उनकी विशिष्ट चालों की नहीं—

'सलीलयातानिनभर्तुरभ्रमो
र्न चित्रमुच्चै : श्रवस: पदक्रमम्।
अनुद्रुत : संयति येन केवलं
बलस्यशत्रु : प्रशशंसशीघ्रताम्॥' १।५२

और, जैसे कौशिक (उलूक) सूर्य को देखने में असमर्थ होकर गुफा में छिपकर दिन बिताता है, उसी प्रकार कौशिक (इन्द्र) ने रावण के भय से कितने दिन सुमेरु पर्वत की गुफा में बिताए थे—

'अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचन:
सहस्ररश्मेरिवयस्यदर्शनम्।
प्रविश्यहेमाद्रिगुहागृहान्तरं
निनायबिभ्यद्दिवसानिकौशिक:॥
(शि०व० १।५२)

इसी प्रकार रावण से त्रस्त अनेक देवताओं की भयक्रिया का मार्मिक काल्पनिक चित्रण माघ ने किया है। मनुष्यधर्मा कुबेर, पाशभृत् वरुण, महिषवाहन यम, ग्रीष्मकालीन दिवाकर, कलासमग्र चन्द्रमा, प्रकम्पनपवन, तनूनपात् अग्नि, पातालवासी भुजंग तथा बन्दीकृत सुरांगनाएं, छ: ऋतुयें, सबकी भयभीत चेष्टाओं का सजीव चित्रण हुआ है। (शि०व० १।५५-६६)

बीभत्स रस

युद्ध-क्षेत्र बहतीशोणित-नदियों से लिपटी पड़ी वीरों की लाशों से क्रव्याद् पक्षियों एवं पशुओं की भुखभरी चेष्टाएं बीभत्स रस की आलम्बन बनती हैं। (१८।७३-७८) शृगाल पहिले लाश से खून पीता है, जो मानो ऐसा आसव (अरिष्ट) है, जो अजीर्ण को पचाकर भूख बढ़ाता (Appetizer) है। फिर कलेजे के साथ लाश को मिलाकर स्वादिष्ठ कर खाता है और विकृतशब्द करता है—

> 'ग्लानिच्छेदीक्षुत्प्रबोधायपीत्वारक्तारिष्टंशोषिताजीर्णशेषम् ।
> स्वादुंकारं कालखण्डोपदंशं क्रोष्टाडिम्बं व्यष्वणद्व्यस्वनच्च ।।'
>
> (शि० व० १८।७१)

बीभत्स का एक दृश्य बीसवें सर्ग में देखने को मिलता है, जब शिशुपाल के ललकारने पर श्रीकृष्ण का रथ भारी पहिए की हाल से लाशों को कुचलता हुआ तथा उनसे निकलने वाले खून से लथपथ हो उसकी ओर बढ़ता है—

> 'अभिचैद्यमगाद्रथोऽपि शौरेर्खनिजागुडकुंकुमाभिताम्रैः ।
> गुरुनेमिनिपीडनावदीर्णव्यसुदेहस्रुतशोणितैर्विलिम्पन् ।।'
>
> (शि०व० २०।३)

करुण रस

वैसे करुण का प्रसंग कहीं विशिष्ट रूप से नहीं आया है। केवल प्रथमसर्ग में रावण द्वारा देवों की दुर्दशा के चित्रण में कहीं करुण झलक पड़ता है, जैसे— 'रावण ने अपना शाङ्गधनुष बनवाने के लिए यम के महिष का शृंगमण्डल (दोनों सींग) उखाड़ लिया। यद्यपि भार तो हल्का हो गया, किन्तु पराजयजन्य लज्जा के भार से आज तक वह महिष दुःख से अत्यन्त झुका कर ही सिर रखता है'—

> 'परेतभर्तुर्महिषोऽमुनाधनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः ।
> हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाहदुःखेनभृशानतं शिरः ।।'
>
> (शि० व० १।५७)

इसी प्रकार विलासिनी-विभ्रमदन्तपत्रिका बनवाने के लिए उसने विनायक का एक दांत ही उखाड़ लिया, जो आज तक फिर न उगा—

> 'विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेनमानिना।
> न जातुवैनायकमेकमुद्धृतंविषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ।।'
>
> (शि०व० १।६०)

रावण के लोकतिरस्कारी महीयान् तेज से अपमानित होकर अग्निदेव भी अपने दु:खजन्य नि:श्वास की आहों से दुगुना धूम धारण करते थे—

'तिरस्कृतस्तस्यजनाभिभाविनामुहुर्महिम्नामहसांमहीयसाम् ।
बभारवाष्पैर्द्विगणीकृतंतनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजै: ।।'
(शि० व० १।६२)।

प्रभातवर्णन के कल्पना-प्रवाह में कवि ने एक करुणामयी उत्प्रेक्षा की है—'प्रभात वेला में चन्द्रमा मानों शोकवश शोभाहीन कृशशरीर धारण कर रहा है। उसकी प्रिय पत्नियां सभी विनष्ट हो गईं। कुमुदिनियों ने आँखें बन्द कर लीं, सभी तारिकाएं विनष्ट हो गईं।' फिर पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल के शिविर में वीरों द्वारा पत्नियों से विदाई लेते समय यत्र-तत्र करुणप्रसग झलक पड़ता है जैसे—"शिशु, सदा की भाँति, चलते समय पिता को टोंक देता है 'पिता जी, कहाँ जा रहे हो?' यात्रा के समय टोकना अशुभ माना गया है। माँ उसे डाँटती है। वीर का धैर्य टूट जाता है—

'व्रजत: क्वतात व्रजसीति परिचयगतार्थमस्फुटम् ।
धैर्यमभिनदुदितं शिशुना जननीनिर्भर्त्सनविवृद्धमन्युना ।।
(शि० व० १५।८७)।

इसमें दम्पती के दैन्य, विषाद, चिन्ता, शंका की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रिय का जयमंगल चाहने वाली सुन्दरी आंखों में भरे आँसू बाहर गिरने नहीं देती, किन्तु शोकशिथिल भुजा से गिरते कंकण (चूड़ियों) को नहीं जान पाती।

'न मुमोच लोचनजलानि दयितजयमंगलैषिणी ।
यातमवनिमवसन्नभुजान्न गलद्विवेदवलयंविलासिनी ।।'
(शि० व० १५।८५)।

किन्तु अत्यन्त भोली चित्तवृत्तिवाली नायिका के बहुत संभालने पर भी आँसू टपक ही पड़ते हैं। अकृत्रिम स्नेह वालों के लिए यही उचित भी है।

'ध्रियमाणमप्यगलदश्रुचलतिदयितेनतभ्रुव: ।
स्नेहमकृतकरसंदधतामिदमेवयुक्तमतिमुग्धचेतसाम् ।।'
(शि० व० १५।८६)।

यहाँ स्नेह भी करुण का पोषक व्यभिचारी है:

'प्रिय का पुन: दर्शन मानो अत्यन्त दुर्लभ जानकर उसके जाते समय अतृप्त-मन से वह जहाँ तक मार्ग पर दिखाई पड़ता है, युवती वहाँ तक अपलक नयनों से उसे देखती रहती है—

'विदुषीवदर्शनममुष्य युवतिरतिदुर्लभं पुन:।
यान्तमनिषमतृप्तमना: पतिमीक्षतेस्म भृशमादृश: पथ:॥'
(शि० व० १५।६४)

स्नेह पर करुणा की कैसी अँधेरी छाया पड़ रही है !

अद्भुत रस

विस्मयभाव के अनेक प्रसंग शिशुपालवध में आये हैं। वस्तुत: कवि-कल्पना के मूल में अतिशयोक्ति होती है, और अतिशयोक्तिजन्य ही अद्भुत रस होता है। अतएव साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के पितामह नारायण कवि ने अद्भुत रस की सत्ता काव्य में सर्वत्र व्याप्त मानी है।

प्रथमसर्ग में नारद का सर्वत: प्रसारीतेज:पुंज रूप में अम्बरतल से उतरना और उनका क्रमश: नारदरूप में अभिव्यक्त होना वस्तुत: वसुदेव सद्म के लोगों के लिए विस्मयावह रहा है (१।१३)

फिर श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ-प्रस्थान के समय तैयार होना, जिसमें उनके दिव्य नेपथ्याभूषण तथा दिव्यास्त्रसन्निधान वर्णित है, वस्तुत: परमविस्मय कारक हुआ है। (शि० व० ३।२-२५) अतएव अनेकश: देखे गये भी मुरारि को देखने नगर की प्रत्येक रथ्या पर अपार जन-सम्मर्द एकत्र हो रहा था—

'दिदृक्षमाणा: प्रतिरथ्यमीयुर्मुरारिमारादनघंजनौघा:।
अनेकश: संस्तुतमप्यनल्पानवंनवंप्रीतिरहोकरोति॥'
(शि० व० ३।३१)

उसी तृतीय सर्ग में द्वारका-वैभव वर्णित है (३।३३-६६) जो अथ से इति तक विस्मयकारक हुआ है। उदाहरणार्थ एकाध चित्र पर्याप्त होंगे—

जहाँ रात्रि में चटक-धवल चांदनी में स्फटिक-निर्मित सौध ऐसे पृथक् नहीं प्रतीत होते (चांदनी के रंग में छिप जाते हैं) कि उन सौधों पर चढ़ी ललनाएं आकाश में विचरती देवांगनाओं-सी लगती हैं—

'स्फुरत्तुषारांशुमरीचिजालैर्विनिन्हुता: स्फाटिकसौधपंक्ती:।
आरुह्यनार्य: क्षणदासु यत्रनभोगता देव्य इवव्यराजन्॥' ३।४३

"जहाँ प्रत्येक रात्रि में चन्द्रकान्तमणिजटित फर्श वाली छतों पर से चन्द्र किरणों के सम्पर्क से पानी के पनाले बहते थे जब कि बादल उनसे नीचे रहते थे—

'कान्तेन्दुकान्तोपलकुट्टिमेषु प्रतिक्षपंहर्म्यतलेषु यत्र।
उच्चैरध: पातिपयोमुचोऽपिसमूहमूहु: पयसांप्रणाल्य:॥'
(शि० व० ३।४४)

'कल्पवृक्ष तो उतना ही दे सकते हैं, जितना मन की पहुंच के भीतर है। द्वारिका में रहने वालों के पास तो जो सम्पदाएं थीं वे मन से सोची भी नहीं जा सकतीं'—

'क्षुण्ण यदन्तःकरणेन वृक्षाः फलन्तिकल्पोपपदास्तदेव।
अध्यूषुषो यामभवञ्जनस्य याः संपदस्ता मनसोऽप्यगम्याः।।'
(शि० व० ३।५६)

यही हाल मार्ग में पड़ने वाले रैवतक पर्वत का है। मुरारि की प्रसन्नता के लिए देवों ने सुमेरु के शिखर लाकर उसे ऊंचा किया था। (शि० व० ४।१०) श्रीकृष्ण ने उसे बहुत बार पहिले भी देखा था, किन्तु उन्हें वह एकदम नया जैसा विस्मय-कारक हो रहा है। वही तो रमणीयता है जो प्रतिक्षण नवीन लगे—

'दृष्टोऽपिशैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।।'
(शि० व० ४।१७)

'रैवतक के शिखरों पर विभिन्न वर्णों की मणियों की भास्वर प्रभाएँ ऊपर आकाश में उठती हैं। और परस्पर ऐसे मिलती हैं कि बिना भित्ति के ही आकाश में चित्र बन जाते हैं, जिन्हें देखकर गगनचारी देवगण भी विस्मित हो उठते हैं'—

'अन्योन्यव्यतिकरचारुभिर्विचित्रै
रत्रस्यन्नवमणिजन्मभिर्मयूरवैः।
विस्मेरान् गगनसदः करोत्यमुष्मि
न्नाकाशेरचितमभित्तिचित्रकर्म।।'
(शि० व० ४।५३)

सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग (४।१-६८) में रेवतक फैला हुआ है, और उसका प्रत्येक श्लोक अद्भूत रस का एक छलकता चषक है।

छठे सर्ग में छहों ऋतुओं का युगपत् रैवतक पर विखर पड़ना स्वयं अपने में विस्मयावह है।

पुनःतेरहवें सर्ग में मयनिर्मित युधिष्ठिर-सभा का परम-विस्मयकारक स्वरूप निरूपित किया गया है। (शि० व० १३।५०-६०) जैसे—'जिस सभा की खड्ग-श्याम इन्द्रनील-जटित भूमि पर जल होने की आशंका से लोग बताने पर भी भीजने के भय से वस्त्र ऊपर उठा लेते और लोगों के हँसी के पात्र बनते जाते हैं—

'हसितुंपरेणपरितः परिस्फुरत्करवालकोमलरूचावुपेक्षितैः।
उदकर्षियत्रजलशंकयाजनैर्मुहुरिन्द्रनीलभुविदूरमम्बरम्।।'
(शि० व० १३।६०)

अट्ठारहवें से बीसवें सर्ग के बीच युद्ध-वर्णन के प्रसंग में तो अनेक विस्मय-कारक कारनामे दोनों ओर से चित्रित किए गए हैं। और सबसे बड़ा विस्मय तो तब हुआ जब श्रीकृष्ण ने अपने ज्वालापल्लवित चक्र से शिशुपाल का शरीर शिर से विहीन कर दिया (ज्वालापल्लवितेन मूर्धविकलं चक्रेण चक्रेवपुः) और दिव्य-शोभा-भास्वर, आकाश में सूर्यरश्मियों को तिरस्कृत करता हुआ, ऋषिगणों द्वारा स्तूयमान, दिव्य दुन्दुभिनाद एवं पुष्पवृष्टि के साथ एक दिव्य तेज शिशुपाल के शरीर से निकल कर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करता हुआ नरेन्द्रों द्वारा देखा गया"—

'श्रियाजुष्टं दिव्यैः सपटहरवैरन्वितंपुष्पवर्षै
वंपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैः स्तूयमानंनिरीय।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरात्विक्षिपद्विस्मिताक्षै
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथविशद्धाम वीक्षांबभूवे॥'
(शि०व० २०।७६)

शान्तरस

शिशुपालवध माघकवि की एक नवरस-रुचिर रचना है। वे प्रधानतः कृष्णभक्ति के कवि थे। अपने काव्य को उन्होंने लक्ष्मीपति के चरित-कीर्तनमात्र से चारु माना है। इस दृष्टि से देखा जाय तो यह महाकाव्य पूरा ही एक स्तोत्र है, और इस का पर्यवसायी रस भक्ति है। किन्तु कवि ने चरितवर्णन में जो सामान्य नायक-चरित की परम्परा निभायी है इससे इसका प्रधान रस वीर ही माना जायगा। अस्तु!

तो, इसमें शान्त का भी प्रसंग कहीं-न-कहीं कवि ने उत्पन्न ही कर दिया है। माघ का प्रसिद्ध प्रभातवर्णन का श्लोक कुछ इसी प्रकार का ज्ञानजन्य निर्वेद उत्पन्न करता है—'कुमुदवन श्रीहीन हो रहा है, तो अम्भोजवन श्रीमान् बन रहा है। उलूक हर्षहीन हो रहे हैं, तो चक्रवाकों की प्रसन्नता बढ़ रही है। उष्णांशु उदयोन्मुख हैं, तो शीतांशु अस्तोन्मुख! दुष्टदैव के कार्यों का परिणाम विचित्र ही होता है—

'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजतिमुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्यातिशीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रोविपाकः॥'
(शि० व० ११।६४)

भक्तिवात्सल्यादिभाव

पूर्वोक्त प्रसिद्ध नवरसों के अतिरिक्त भक्ति एवं वात्सल्य भी, जो रतिभाव के ही आलम्बन-भेद से भिन्न रस रूप में कुछ आचार्यों द्वारा माने गए हैं, शिशुपालवध में यत्र-तत्र चित्रित किए गए हैं।

प्रथम सर्ग में ही नारद-श्रीकृष्ण-संवाद में भक्ति रस के दर्शन होते हैं। श्रीकृष्ण के लिए नारद पूज्यतम जगद्वन्द्य देवर्षि हैं, तो नारद के लिए श्रीकृष्ण मानव-रूप में साक्षात् परब्रह्मपरमात्मा ही हैं। दोनों की एक दूसरे के प्रति अमायिक एवं अव्याज भक्ति है। नारद के आने पर भावविभोर यदुनन्दन के विश्वम्भर शरीर में हर्ष समा नहीं रहा है। सूर्यतुल्य मुनि की ओर हर्ष-विकसित नेत्रों से देखते हुए वे आज ही तो यथार्थ में पुण्डरीकाक्ष हुए हैं—ये सभी भक्ति के अनुभाव हैं। अपने श्रद्धाभाव को व्यक्त करते हुए (१।२६-३०) श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मुने, पापनाशक आपके इस दर्शनमात्र से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। फिर भी आपके श्रीमुख से आपकी गौरवमयी वाणी सुनना चाहता हूँ। भला कल्याण के प्रति किसको तृप्ति होती है?'—

> 'विलोकनेनैवतवामुना मुने, कृतः कृतार्थोऽस्मि निर्बर्हितांहसा।
> तथापिशुश्रूषुरहं गरीयसी गिरोऽथवा श्रेयसि केनतृप्यते।।'
>
> (शि०व० १।२९)

भगवान् श्रीकृष्ण के इस स्नेहमय विनय से भक्त नारद की भक्तिभावना कितनी सघन हो गयी होगी इसका अनुमान इस एक वाक्य से ही लगाया जा सकता है जब वे निस्पृह योगियों की भी एकमात्र साध्य स्पृहा का उल्लेख करते हैं कि 'ऐसा न कहो पुरुषोत्तम, इससे बड़ा प्रयोजन और क्या हो सकता है कि तुम्हारा दर्शन करना है।' (१।४१) और इसके बाद जो सातश्लोक (१।३२-३८) उन्होंने कहे हैं वे ज्ञानी भक्त के महीयान् भावोद्गार हैं। उसी प्रसंग में उनकी एक उक्ति है—

'प्रभो, अपने तेज से जगद्द्रोहियों को विनष्ट करने के लिएयदि इस भूतल पर अवतीर्ण न हों, तो समाधिनिष्ठों के लिए भी दुर्लभ आप भला मुझ जैसे चर्मचक्षु वालों को कैसे नेत्र-गोचर हों।'

> 'निजौजसोज्जासयितुंजगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
> समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीशमादृशाम्।।'
>
> (शि० व० १।३७)

कवि अपनी काव्य-सृष्टि का प्रजापति होता है। स्वेच्छा से अचेतन को चेतनवत् तथा चेतन को अचेतनवत् निरूपित करता रहता है। श्रीकृष्ण के प्रति माघकवि ने उसी भक्ति-भावना की झलक द्वारिका नगरी में पायी और उस सागर

में भी, जिसमें द्वारिका वसी थी। क्योंकि जब श्रीकृष्ण द्वारिका अर्थात् विशाल-द्वार (गोपुर) वाली उस नगरी से बाहर निकले तो सेना-लहरियाँ उस नगरी की वीथी-रूपी भुजा से चूड़ियों की तरह बाहर निकल पड़ीं, मानो उसे चक्रपाणि के निकलने पर अपना द्वारवतीत्व अर्थात् विशाल द्वार वाला होना प्रिय नहीं लगा। कृष्ण-वियोग से कृश हो गयी—

'वलोर्मिभिस्तत्क्षणहीयमानरथ्याभुजाया वलयैरिवास्याः।
प्रायेणनिष्क्रामतिचक्रपाणौनेष्टंपुरोद्वारवतीत्वमासीत् ॥' ३।६९

इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण, सागरतट पर पहुंचे तो सागर अपनी गोद में सोने वाले युगान्तबन्धु (आपद्बन्धु) को आया देख अतिहर्ष से अपनी उत्तुंग तरंगरूपी बाहुओं को फैलाकर मानो उनकी अगवानी के लिए दौड़ा'—

'तमागतंवीक्ष्ययुगान्तबन्धुमुत्संगशय्याशयमम्बुराशिः।
प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोदप्रसारितोत्तुंगतरङ्गबाहुः ॥'
(शि० व० ३।७८)

फिर यमुना पार कर श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ के समीप पहुंचने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने बन्धुपरिजनसमेत जिस प्रकार उनकी अगवानी की उसमें उनकी भक्ति की सीमा तक पहुँचा स्नेह व्यक्त होता है, तथा श्रीकृष्ण जैसे उनसे मिले उससे उनका भी पाण्डवों के प्रति स्नेह वात्सल्य भाव प्रकट होता है (शि०व० १३।१-२४)। परस्पर का स्नेह सम्भ्रम भाव देखिए—

'श्रीकृष्ण को दूर से ही देखकर नृपति युधिष्ठिर रथ से उतरने को थे, कि श्रीकृष्ण उनसे पहिले ही अपने रथ से उतरकर अपने सम्भ्रम द्वारा उनसे विनय में बढ़ गये—

'अवलोकएवनृपतेःस्मदूरतोरभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।
अवतीर्णवान् प्रथममात्मनाहरिर्विनयं विशेषयतिसंभ्रमेणसः ॥'
(शि० व० १३।७)

और भुवनवन्द्य पुराणपुरुष बुआ के पुत्र को स्वयं प्रणाम करते हैं (१३।८) किन्तु उनके शिरसा भूतलस्पर्श करने के पूर्व ही युधिष्ठिर उन्हें अपने भुजपंजर में कस लेते हैं (१३।६) और उन्हें हृदय से लगा कर शिर पर सूंघते हैं। (१३।११,१२)। उस समय श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर दोनों ही आनन्द से रोमांचित हो रहे थे—

'सुखवेदना-हृषित-रोमकूपयाशिथिलीकृतेऽपिवसुदेवजन्मनि।
कुरुभर्तुरंगलतया न तत्यजेविकसत्कदम्बनिकुरम्बचारुता ॥'
(शि०व० १३।१३)

और 'अनुरागभावित धर्मराज ने श्रीकृष्ण को रथ पर बैठाकर स्वयं चाबुक पकड़ी, जैसे त्रिपुरारि के रथ को स्वयं प्रजापति ब्रह्मा ने हांका था—

'रथमास्थितस्य च पुराभिवर्तिनस्तिसृणांपुरामिवरिपोर्मुरद्विषः ।
अथधर्ममूर्तिरनुरागभावितः स्वयमादित प्रवयणं प्रजापतिः ।।'
(शि० व० १३।१६)

भीम चामर डुला रहे थे। (मरुतश्चसुनुरधुवत्प्रकीर्णकम् १३।२०) और अर्जुन छत्र सम्भाले हुए थे (जिष्णुरभृतोष्णवारणम् १३।२१)

पुनः चतुर्दश सर्ग में यज्ञ प्रारम्भ करने के पूर्व युधिष्ठिर के सप्रश्रय निवेदन में उनकी श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति अभिव्यक्त होती है, तथा श्रीकृष्ण के प्रत्युत्तर में उनका युधिष्ठिर तथा पाण्डवों के प्रतिस्नेह प्रकट होता है (१४।१-१७) युधिष्ठिर कहते हैं, 'प्रभो, तुम्हारी कृपा से यज्ञ करना चाहता हूँ। (१४।६) तुम्हारे अनुग्रह से प्राप्त इस अर्थ-सम्पत्ति से क्या करना है यह तुम्हीं निर्दिष्ट करोगे। त्रैलोक्य के शासक, मुझे भी आज्ञा दो। मैं अपने अनुजों सहित आपका आज्ञापालक हूँ—

'किं विधेयमनया विधीयतां त्वत्प्रसादजितयार्थसंपदा ।
शाधि शासक ! जगत्त्रयस्यमामाश्रवोऽस्मि भवतः सहानुजः ।।'
(शि० व० १४।११)

श्रीकृष्ण ने उनके स्नेह का प्रत्युत्तर देते हुए उसी प्रकार विनय व्यक्त किया। वे कहते हैं—'आपकी दुष्कर आज्ञा को भी करने को मैं तैयार हूँ। मुझे आप स्वेच्छा से आज्ञा दीजिए। और भवन्निष्ठ मुझे धनंजय से पृथक् न समझिएगा—

'शासनेऽपिगुरुणिव्यवस्थितंकृत्यवस्तुषुनियुंक्ष्वकामतः ।
त्वत्प्रयोजनधनं धनंजयादन्य एष इतिमांचमावगाः ।।'
(शि० व० १४।१६)

उसी स्नेहभाव का व्यभिचारीसहायक उत्साहभाव श्रीकृष्ण के इस वचन में व्यक्त होता है—'आपके इस यज्ञ में जो राजा भृत्य की तरह काम न करेगा, उसके शरीर को मेरा जगद्बन्धु यह सुदर्शनचक्र कबन्ध-शेष कर देगा'—

'यस्तवेहसवने न भूपतिः कर्म कर्मकरवत्करिष्यति ।
तस्यनेष्यति वपुः कबन्धतांबन्धुरेष जगतां सुदर्शनः ।।'
(शि० व० १४।१६)

भक्तिभाव का पूर्ण दर्शन इसी चतुर्दश सर्ग में भीष्म के उस समस्त कथन में होता है, जो उन्होंने सभा में युधिष्ठिर के प्रथम-अर्घ्य-योग्य व्यक्ति पूछने पर श्रीकृष्ण के प्रति कहे। (१४।५८-८८)। इसी प्रसंग में उन्होंने श्रीकृष्ण के

भक्तवत्सलत्व, सृष्टि-कर्तृत्व, पालकत्व तथा संहर्तृत्व का वर्णन करते हुए उनके विशिष्ट अवतारों का गान किया है, और अन्त में वे कहते हैं—'युधिष्ठिर, तुम पुण्यवान् हो कि जिनके लिए परोक्ष में भी यज्वा यज्ञ करते हैं, तुम्हारे यज्ञ में वे हरि साक्षात् स्थित हुए हैं, पूज्यतम को प्रथम अर्घदेकर सम्पूर्ण विश्व में साधुवाद प्राप्त करो—

'धन्योऽसि यस्य हरिरेषसमक्ष एव
दूरादपि क्रतुषु यज्वभिरिज्यते यः ।।
दत्वार्धमत्रभवते भुवनेषु याव ।
त्संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम् ।।'
(शि० व० १४।८७)

वात्सल्यभाव का एक अतिमार्मिक चित्रण कवि ने उत्प्रेक्षालंकार की योजना में किया है—"रैवतक पर्वत से उद्भूत नदियां जो निःशंकभाव से पर्वत की गोद में लुढ़कती रहीं, आगे पति (सागर) के पास प्रस्थान कर रही हैं। अतः रैवतक पर्वत पक्षियों के करुण विराव द्वारा मानो वात्सल्य से रो रहा है।"

'अपशंकमंकपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः ।
अनुरोदितीव करुणेनपत्रिणांविरुतेनवत्सलतयैवनिम्नगाः ।।'
(शि० व० ४।२७)

रसभाव की अभिव्यक्ति में माघ ने ओजस्, प्रसाद एवं माधुर्य सभी गुणों का यथोचित उपयोग किया है। गुण रस-भाव के नित्य धर्म माने गए हैं। माघ इस रहस्य से पूर्ण परिचित हैं। उनका कहना है कि—"नैकमोजः प्रसादो वाऽ रस भावविदः कवेः।" रसानुकूल ओजस् या माधुर्य गुण के व्यंजक वर्णों की योजना पर कवि की विशिष्ट दृष्टि रही है। भाषा पर इतना विस्मयकारक अधिकार संस्कृत-साहित्य में किसी अन्य कवि का नहीं दिखाई पड़ता है। अभिनवपदशय्या, अभिनवअर्थों का मुकुट बांधे जैसे स्वतः चली आती है।

अलंकारयोजना अथवा शब्दार्थलालित्य

कवि की काव्य-प्रतिभा का दूसरा स्फुरण अलंकारयोजना में होता है। अलंकार साक्षात् शब्द और अर्थ के धर्म या वैशिट्य हैं। काव्य के जीवित-सर्वस्व रसभाव की अभिव्यक्ति में शब्द एवं अर्थ को रमणीयता के साथ समर्थ बनाना ही अलंकारयोजना की सार्थकता है। माघकवि की मान्यता है कि सत्कवि शब्द एवं अर्थ दोनों की समान अपेक्षा रखता है—(शब्दार्थौसत्कविरिवद्वयं विद्वानपेक्षते ।। २।८६) शब्द-योजना की दक्षता के साथ अर्थकल्पना की माघ में अप्रतिम प्रौढि दिखाई पड़ती है। यही कवि की कल्पनाशक्ति है। शब्दों की वक्रिमा तथा अर्थों की भंगिमा माघ की विशेषता है। यही वक्रोक्ति है, जिसे काव्यजीवित कहा गया है। माघ में कालिदास की-सी उपमा, भारवि की-सी अर्थगम्भीरता तथा दण्डी का-सा पद-लालित्य तीनों गुण कहा गया है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्तित्रयोगुणाः ।।

माघ का समय ध्वनि-सम्प्रदाय अथवा काव्य में व्यंजना के महत्त्व की प्रतिष्ठा के आन्दोलन के पूर्व ही हो गया था, जब कि काव्य में रस-भाव-मर्मज्ञ कवि सभी शब्द एवं अर्थ के अलंकारों और गुणों की साधिकार योजना को अपनी काव्य-सफलता के लिए परमावश्यक मानता था। बिना ध्वनि-सिद्धान्त का परिशीलन किये भी अनादिकाल से महाकवि की सहज प्रतिभा रसभावादिरूप श्रेष्ठ व्यंग्य अर्थ' का निष्यन्दन करती रही है—(अतएवध्वनिकार ने कहा है कि—सरस्वती स्वादुतदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्। अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति-परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् ।। ध्व१।६)

महाकवियों के काव्य में जहां भी रस-भाव होंगे, वे अपने स्वभाव से व्यंग्य रूप ही होंगे। कवि अलंकार और गुण की योजना विभाव एवं अनुभाव के वर्णन में करता है, और रस की निष्पत्ति होती चलती है। माघ के पूर्व भारवि आदि महाकवियों ने अलंकारों का भूयिष्ठ उपयोग किया था। वैसे कालिदास की प्रतिभा ने भी अलंकारों का उपयोग किया है—शब्दालंकारों में अनुप्रास के वे

नित्य एवं सहज प्रेमी, यमक का भी विशेष उपयोग करने वाले तथा श्लेष का भी साधिकार प्रदर्शन करने वाले हैं। किन्तु अर्थालंकारों में वे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास तथा विरोधाभास के अद्वितीय शास्ता माने जाते हैं। उनके अलंकारों की विशेषता उनकी रस-भाव-व्यंजकता है। प्रत्येक अलंकार कोई-न-कोई रमणीय व्यंग्य अर्थ अवश्य प्रकाशित करता है। वहां अलंकार अलंकारके लिए नहीं है, अपितु काव्यात्मा को अलकृत करने के लिए है। भारवि ने शब्दार्थ-वैचित्र्य की ओर विशेष ध्यान दिया, और श्लेष, अनुप्रास-चित्रादि अलंकारों से शब्द तथा अर्थान्तरन्यास-अतिशयोक्ति आदि से अर्थ को अत्यधिक विभूषित किया। युद्ध-वर्णन में विवध चित्रवन्धों की कल्पना की। परिणामतः उनका किरातार्जुनीय, जहां एक ओर रस-भाव-निष्पत्ति तथा अर्थ-गाम्भीर्य के लिए एक उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है, वहीं अलंकार शैली का प्रवर्तक होने का भी विरुद प्राप्त करता है। माघ का समय उनके बाद पड़ता है। भारवि के नियतकिये मान-दण्ड की वड़ी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। माघ शक्ति-व्युत्पत्ति दोनों के धनी थे। अतः उन्होंने अपनी रचना को अपनी शक्ति एवं व्युत्पत्ति दोनों से सम्पन्न किया। एक ओर रसभाव से सराबोर किया, तो दूसरी ओर अलंकारगुणों का जमघट लगा दिया। भारवि के समय से ही युद्ध के व्यूह एवं बगमेल का शाब्दिक चित्र उपस्थित करने के लिए चित्रालंकारों अर्थात् मुरज-सर्वतोभद्रादि-बन्धों का उपयोग किया जाने लगा था। अतः माघ ने कहा है कि —'जैसे सर्वतोभद्र-चक्रगोमूत्रिकादिवन्धों द्वारा महाकाव्य विषम हो जाता है—वैसे ही व्यूहों अर्थात् सेना के विशिष्ट विन्यासों द्वारा वह शिशुपाल-सैन्य विषम हो गया था'—

'विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिवमहाकाव्यव्यूहैस्तदभवद्‌वलम्' ॥१९।४१॥

इस चित्रबन्ध-मयी रचना द्वारा माघकवि का व्यक्तिगत उद्देश्य केवल इतना ही था कि वे प्रमाणित करना चाहते थे कि वे इस कठिन रचना को करने में भी पूर्ण सिद्धहस्त अथवा सर्वश्रेष्ठ हैं। चित्रालंकारों में उन्होंने एक तो एकाक्षर श्लोक रचा है—

'दाददोदुद्‌दुद्दादी दादादो दुददीददो :
दुद्दादं ददद दुद्दे ददाददददोऽददः॥' (१९।११४)

इसी प्रकार दस द्वयक्षर श्लोक (१९।६६, ८४, ८६, ९४, ९८, १०० ,१०२,१०४ १०६, १०८), एक एकाक्षरपाद श्लोक(१९।३), दो अर्धसमश्लोक (१९।५,५४), दो श्लोकों का प्रतिलोमयमक रूप (१९।३३-३४), एक श्लोक में श्लोकप्रति-लोमयमक (१९।१९०), एक असंयुक्त वर्णात्मक श्लोक (१९।६८) एक अतालव्य-

द्व्याक्षरश्लोक (१६।११०), एक निरोष्ठश्लोक (१६।११), दो समुद्गयमक (१६।५८,११८) एकत्र्यर्थकश्लोक (१६।११६) एक गूढ़चतुर्थश्लोक, एक गतप्रत्यागतश्लोक (१६।८८) रचे हैं।

चित्रबन्धों में उन्होंने एक सर्वतोभद्र (१६।२७), एक मुरजबन्ध (१६।२६), एक गोमूत्रिकाबन्ध (१६।४६) एक अर्धभ्रमक (१६।७२) तथा सर्गान्त में एक चक्रबन्ध (१६।२०) मयी रचना की है। ये चित्रबन्धमयी रचनाएं अतिशय श्रम-साध्य हैं। उदाहरणार्थ इस मुरजबन्ध में मुरज (ढोलक) में बंधी रस्सियों की तरह तिरछे ढंग से पढ़ने पर भी प्रत्येक चरण का वही रूप होता है—

'सा से ना ग म ना र भे
र से ना सी द ना र ता।
ता र ना द जना म त।
धी र ना ग म ना म या।।' (१६।२६)

इस सर्गान्त के शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में कष्ट-साध्य चक्रबन्ध की कल्पना की गयी है। इसके प्रथम तीन पदों के दसवें अक्षर 'र' को केन्द्र की प्रथम परिधि में रखकर उसके चारों ओर ६ और परिधियां बनायी गयी हैं। प्रथम तीन चरणों को मध्य में विभक्त कर ६ पंक्तियों को एक-एक परिधि में एक-एक अक्षर रखते हुए, रखा गया है। चतुर्थ चरण अन्तिम परिधि में रखा गया है। पाँचवी परिधि में पढ़ने पर 'शिशुपालवधः' तथा आठवीं परिधि में पढ़ने पर 'माघकाव्यमिद' निकलता है। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

'सत्त्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो
लब्धाघक्षयशुद्धिरुद्धुरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः स नादं हरे
रेकौघैः समकालमभ्रमुदयीरोपैस्तदा तस्तरे।।'
(१६।१२०)

बन्धों में इसी प्रकार सर्वतोभद्र एक कठिन बन्ध है। इसके चारों चरणों में १ और ८, २ और ७, ३ और ६, तथा ४ और ५ वर्ण समान होते हैं। प्रत्येक चरण आधे के बाद उलट कर लिखा जाता है। और प्रत्येक पंक्ति का प्रथम से चतुर्थ अक्षर तक क्रम से सीधे-उल्टे पढ़ने पर श्लोक के प्रथम से चतुर्थपाद बन जाते हैं। इसी प्रकार पंचम से अष्टम वर्ण तक क्रमशः प्रत्येक पंक्ति के सीधे-उलटे पढ़ने पर चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम पंक्तियां बन जाती हैं। माघ में वह श्लोक इस प्रकार है—

स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का।
र सा ह् वा वा ह् सा र
ना द वा द द वा द ना ।। (१९।२७)

ये सब चित्रबन्ध अथवा चित्रालंकार शब्दालंकारों में गिने जाते हैं। एकाक्षर द्व्यक्षर तो अनुप्रास में संगृहीत हैं। अनुप्रास के छेक (१।३५), वृत्ति (४।१६), (५।२४) भेद भी प्रयुक्त हुए हैं।

यमक का विविध प्रयोग माघ ने किया है। सम्पूर्ण षष्ठ सर्ग यमकों की बस्ती है। यमक के कुछ छुटपुटे उदाहरण अन्यसर्गों में भी मिलते हैं, जैसे ४।३० में दाम-यमक, ४।३६ में शृंखला-यमक आदि।

शब्दश्लेष का प्रयोग उपमादि अन्य अलंकारों के साथ तो हुआ ही है, इसका स्वतन्त्र प्रयोग भी माघ ने किया है, जैसे २।८८ में।

अर्थालंकारों की तो शिशुपालवध में भरमार है। लेखा करने पर कुल करीब ५६ अलंकारों का प्रयोग मिलता है। अकारादिक्रम से उनकी एक-एक सूची इस प्रकार बनती है—वैसे उनके अनेक उदाहरण-स्थल हैं—

अतद्गुण	१०।७६		
अतिशयोक्ति	१।२३	एकावली	१०।३३
अधिक	१४।७५	काव्यलिंग	५।५०
अन्योन्य	१९।२०	तुल्ययोगिता	५।२१, ८।३०
अपह्नव	९।४८	दीपक	२।१०९
अप्रस्तुतप्रशंसा	१६।२१	दृष्टान्त	१४।८
अर्थान्तरन्यास	९।४३	निदर्शना	४।२०, ८।५६
अर्थापत्ति	८।२४	परिकर	१७।२१
असंगति	१०।४६	परिणाम	४।५४
आक्षेप	१५।८३	परिवृत्ति	१८।१५
उत्प्रेक्षा	८।१५	परिसंख्या	१४।६६
उदात्त	११।३६	पर्याय	१३।११
उपमा	३।१७,५।११	पर्यायोक्त	२०।७८
(आर्थी) उपमा	१।६	प्रतिवस्तूपमा	२।८
उपमेयोपमा	११।१५	प्रतीप	१६।६१
पूर्णोपमा	८।९	प्रत्यनीक	१४।७८
ऊर्जस्वी	११।२६	प्रेयस्	१३।४६

		विशेषोक्ति	१२।३६
		विषम	३।४५
		व्यतिरेक	२।४६
		व्याजस्तुति	२।७०
		संशय	१८।४२
भाविक	२०।७६	सन्देह	८।२६
भ्रान्तिमत्	४।४६	सम	७।५३
मीलित	१०।२६	समाधि	६।४६
यथासंख्य	१०।३४	समासोक्ति	६।२५
रसवत्	६।७५	समुच्चय	६।७२
रूपक	६।२७	सहोक्ति	१६।६३
विचित्र	१३।८	सामान्य	१३।५३
विभावना	७।५७	सूक्ष्म	६।७६
विरोध	३।४४	स्वभाव	६।७४
विरोधाभास	३।५०,३।६८	स्वभावोक्ति	३।६६
वशेष	२।३५	स्मरण	८।६४

इस पूर्वोक्त सूची में एक अलंकार का एक ही उदाहरण संकेतित है। इनके अतिरिक्त इन अलंकारों के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। अब थोड़ा उनके उपमा तथा अन्य एक-दो अलंकारों के प्रयोग में विशिष्ट सौष्ठव की बानगी लेनी अवसरोपयुक्त होगी।

उपमा—माघ की उपमा कालिदास की जैसी मानी गयी है। कालिदास ने नूतन, व्यंजकतामयी, सूक्ष्म, औचित्यमयी, हृद्यभावोदात्त तथा मधुर उपमाएं संयोजित की हैं। माघ ने भी सूक्ष्म, मधुर, गम्भीर, नूतन एवं पाण्डित्यपूर्ण उपमाएं विन्यस्त की हैं। कालिदास की उपमा सहज होती है, तो माघ की प्रायः कल्पित। कालिदास को उपमान खोजने दूर नहीं जाना पड़ता, मानों वे उनके आसपास ही रहते हैं, तो माघ को कभी-कभी कल्पना के सहारे दूर से उपमान लाने पड़ते हैं। अस्तु। द्वारिका की शोभा वर्णन करते हुए माघ कहते हैं स्निग्धाञ्जनश्याम-श्रीकृष्ण से उसी प्रकार उस नगरी की शोभा विशिष्ट हो रही थी, जैसे अलंकृत वधू की शोभा तिलकबिन्दु से होती है—

> 'स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो वध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः।
> विशेषको वा विशिशेष यस्याः श्रियं त्रिलोकीतिलकःसएव' ।।३।।

यहां श्रीकृष्ण की द्वारिका की सर्वश्रेष्ठ शोभा एवं धनरूप बताने में कवि ने सुहागिन के तिलकबिन्दु से उपमा देकर जो व्यंजना की है वह अन्य किसी प्रकार से नहीं की

जा सकती थी।

प्रातः, रात्रिगमन तथा उषा-आगमन का माघ ने उपमा द्वारा अतिशय भावुक चित्र खींचा है—

'अरुण-पंकज-श्रेणी ही जिसके मुग्ध हाथ-पैर हैं, श्याम भ्रमरावली जिसकी कज्जल रेखा है, तथा नीलकमल जिसके नेत्र हैं, ऐसी प्रभातवेला सद्योजाता पुत्री की भांति पक्षियों का कलरव करती हुई (माता) रजनी के पीछे-पीछे चली आ रही है'—

'अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादाबहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव॥'

एक अन्य अतिशय हृद्य उपमा की सुषमा प्रभात वर्णन में ही देखिए—
'दिग्वधुओं का पाणिग्रहीता भर्ता सूर्य क्षण (रात्रि)-भर के लिए प्रवास में था। फिर पूर्व की ओर आता दिखायी पड़ा। अतः उपपति (जार) की भांति विगलितांशुक (खिसकते वस्त्रों अथवा रश्मि-विगलित) चन्द्रमा झुककर पश्चिम (पीछे) की ओर से तेजी से निकला जा रहा है—

'क्षणमतुहिनधाम्निप्रोष्य भूयः पुरस्ता
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा
वुपपतिरिवनीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः॥' ११।६५

इस उपमा से रात्रि में दिग्वधुओं का सौन्दर्याधिक्य, प्रातः सूर्य के प्रति अनुरागाधिक्य तथा चन्द्रमा का मालिन्याधिक्य सब कुछ अतिशय रमणीयता के साथ चित्रित किऐ गए हैं।

एक उपमा युद्ध के लिए प्रस्थित श्रीकृष्णसेना के वर्णन से है—"जैसे-जैसे श्रीकृष्णरूपवर के आगे बजने वाले उस नगाड़े का घोष समीप आ रहा था वैसे-वैसे शत्रुसेना विवाहोचित वधू की भांति रोमांचित एवं हर्षविह्वल हो रही थी—

'यथा यथा पटहरवः समीपतामुपागमत् सहरिवराग्रतःसरः।
तथा तथा हृपितवपुर्मुदाकुला द्विषां चमूरजनिजनीवचेतसा॥' १७।४३

इस उपमा से सेना का उत्साह बड़ी सुदरता से व्यंजित हो रहा है।

श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल की सेनाओं की परस्पर मुठभेड़ का वर्णन करते हुए कवि कहता है—'पैदल पैदल से, घुड़सवार घुड़सवार से, हाथी हाथी से तथा रथारूढ़ रथारूढ़ से इस प्रकार सेना शत्रुसैन्य से युद्धानुराग के साथ ऐसे भिड़ गई जैसे कान्ता रतिराग के साथ वल्लभ के अंगों से अपने उन्हीं अंगों द्वारा लिपटती है—

'पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजी नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।
इत्थं सेना वल्लभस्येवरागादंगेनागं प्रत्यनीकस्य भेजे ।। १८।२

युद्धवर्णन के क्षेत्र में बलराम की ओर बाणासुर का पुत्र वेणुदारी झपटता है। दूर से ही आते हुए उसे, अपने पराक्रम को सम्भालकर, बलराम ने इस प्रकार देखा जैसे सिंह मातंग को देखता —

'आपतन्तममुंदूरादूरीकृतपराक्रमः। बलोऽवलोकयामासमातंगमिवकेसरी' (१९।२)

दोनों के उत्साह की ऐसी व्यंजना और किसी उपाय से नहीं हो सकती थी। कभी-कभी माघ उपमा की पोटली में बिम्ब-ग्रहण की सुविधा के लिए किसी शास्त्र विशेष को ही पूरा समेट कर रख देते हैं—उदाहरणार्थ —'राजनीति में कार्य-सिद्धि सहाय, साधनोपाय आदि पांच अंगों से उसी प्रकार पृथक् नहीं हैं, जैसे बौद्धों के यहां रूप, वेदना, विज्ञान आदि पांचस्कन्धों से पृथक् आत्मा-नामक कोई वस्तु नहीं है'—

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपंचकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्तिमन्त्रोमहीभृताम् ।।' २।२८

फिर सांख्यदर्शन के मुख्यतत्त्व को उपमा की वीथी में लाते हैं—बलराम शिशुपाल पर आक्रमण करने की सलाह देते हुए श्रीकृष्ण से कहते हैं—'सेनाद्वारा अर्जित विजय केवल द्रष्टा रूप में स्थित आप की ही कही जायगी, जैसे सांख्य-शास्त्र में बुद्धि या महत्त्व के सुखदुःखानुभवरूपभोग आत्मा के व्यवहृत किये जाते है—

'विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि ।।' २।५९

व्याकरण शास्त्र से तो अनेक उपमाएं माघ ने ली हैं। जैसे, शिशुपाल का दूत अपने स्वामी की प्रशंसा करता हुआ कहता है 'कि जिसकी अतिस्वल्पाक्षरा भी आज्ञा व्याकरण-शास्त्र की परिभाषा की भांति गरीयसी होती है, कहीं बाधित नहीं होती—

'परितःप्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा ।।' १६।८०

'प्रमदाओं में सदा स्वभाव से विद्यमान किन्तु अनवसर न प्रकाशित होने वाले विभ्रम-विलास को मदिरामद ने इस प्रकार प्रकट कर दिया जैसे धातु में ही लीन अर्थ को उपसर्ग साथ होकर प्रकाशित कर देता है'—

'सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदंगे।
विभ्रमं मधुमदः प्रमादानां धातुलीनमुपसर्गइवार्थम् ।।' १०।१५

एक उपमा आयुर्वेदप्रक्रिया की है। 'जैसे विकारकारी प्रकुपित रोग विकार उत्पन्न करता है उसी भांति शिशुपाल ने जो-जो अस्त्र प्रकट किये, उसे शीघ्र ही, जैसे क्रमवेत्ता वैद्य गुरुदोषनिवर्तक उपाय से रोगविकार दूर करता है, वैसे श्रीकृष्ण विनष्ट करते जाते थे—

'इतिनरपति रस्त्रंयद् यदाविश्चकार
प्रकुपित इवरोगःक्षिप्रकारी विकारम्।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण
क्रमविदथमुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु ।।२०।७६

इतिहास-पुराणों से तो अनेक उपमाएं आयी हैं। प्रसिद्धकथानक सादृश्य के आधार पर अर्थबोध बड़ी रमणीयता से कर देते हैं—जैसे रैवतक पर पड़ाव के समय—

'ऊंट के मुंह में किसी नीम के पत्तों के साथ कोमल आम का पत्ता भी चला गया। ऊंट ने तुरत उस आम के पत्ते को इस प्रकार उगिल दिया जैसे पुराने समय में गरुड़ ने निषादों के साथ निगले गये ब्राह्मण को उगिला था'—

'सार्धं कथंचिदुचितैः पिचुमर्दपत्रै
रास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादै
र्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ।। ५।६६

इन्द्रप्रस्थ पहुंचने पर पुर की ओर जाते हुए श्रीकृष्ण के रथ को स्वयं धर्मराज हांक रहे थे, जैसे त्रिपुर की ओर जाते हुए पुरारि के रथ को स्वयं प्रजापति ब्रह्मा ने हांका था—

'रथमास्थितस्य च पुराभिवर्तिनस्तिसृणांपुरामिवरिपोर्मुरद्विषः।
अथधर्ममूर्तिरनुरागभावितः स्वयमादित प्रवयणं प्रजापतिः ।।१३।१९

युद्ध स्थल में 'क्रुद्ध हाथी सेना के विशाल दुर्गम मध्य में पहुंचकर इस प्रकार चारों ओर भटकने लगता है, जैसे मार्कण्डेय ब्राह्मण आदि देव विष्णु के उदर में पहुंचकर भटकते रहे थे—

'व्याप्तं लोकैर्दुःखलभ्यापसारं संरम्भित्वादेत्य धीरोमहीयः।
सेनामध्यं गाहतेवारणः स्म ब्रह्मेव प्रागादिदेवोदरान्तः ।।१८।४०

भ्रान्तिमान्—द्वारिका की सुषमा का वर्णन करते हुए माघ ने एक बड़ी स्वाभाविक भ्रान्ति चित्रित की है—"जहां महलों के विटंकों पर बनी कृत्रिम चिड़ियों की पंक्ति पर आक्रमण करने की मुद्रा में निस्पन्द आयत शरीर बिडाल को भी लोग कृत्रिम ही समझ लेते थे'—

'चिक्रंसया कृत्रिमपत्रिपंक्तेः कपोतपालीषुनिकेतनानाम्।
मार्जारमप्यायतनिश्चलांगं यस्यां जनः कृत्रिममेव मेने ।।' (शि०व० ३।५१)

उत्प्रेक्षा—उपमा के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा में भी माघ की प्रतिभा ने उत्कृष्ट प्रदर्शन किये हैं। वस्तुत: कवि-कल्पना की उड़ान उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति के ही पंख लगाकर अधिक चलती है। माघ की उत्प्रेक्षा बड़ी परिष्कृतरूप में आती है। जैसे—द्वारिकावर्णन के प्रसंग में—

'चारों ओर सागर के बीच बसी द्वारिका, जो विश्वकर्मा के भवन-शिल्प निर्माणविज्ञान के वैभवप्रसार की पराकाष्ठा-रूप थी, ऐसी दिखती थी मानों सागर के निर्मल जलरूप दर्पणतल में पड़ता स्वर्गपुरी का ही प्रतिबिम्ब हो—

> 'त्वष्टु: सदाभ्यास-गृहीत-शिल्पविज्ञानसंपत्प्रसरस्यसीमा।
> अदृश्यतादर्शतलामलेषु छायेव या स्वर्जलधेर्जलेषु ॥' ३।३५

एक अन्य उत्प्रेक्षा प्रभातवर्णन के प्रकरण में—

'प्रात: क्षीण दीपक गृह का नयन-सा अपलकरूप से प्रेमियों की सारी रात अविराम चलती नवसुरतलीलाओं को सकौतुक देखता रहा। अब नींद में चकरा रहा है—

> 'अनिमिषमविरामां रागिणां सर्वरात्रं
> नवनिधुवनलीलां कौतुकेनातिवीक्ष्य
> इदमुदवसितानामस्फुटालोकसंप
> न्नयनमिवसनिद्रं घूर्णतेदैपमर्चि: ॥'' ११।१८

इसी प्रभातवर्णन-प्रकरण की एक और उत्प्रेक्षा दर्शनीय है—

'प्रात: होते चन्द्रमा क्षीण तथा नष्ट-कान्ति हो जाता है, मानों उस कलत्र-प्रेमी को यह शोक सता रहा है कि हाय, मेरी प्रिय कुमुदिनियों ने आंखें मूंद लीं, रजनी भी विनष्ट हो गई और मेरी सभी प्रिय ताराएं विनष्ट हो गयीं ?'

> 'सपदिकुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
> क्षयमगमदपेतास्तारकास्ता: समस्ता:।
> इतिदयितकलत्रश्चिन्तयन्नंगमिन्दु
> र्वहतिकृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥११।२४

अर्थान्तरन्यास—माघ में भारवि का-सा अर्थगौरव कहा गया है। वह अर्थ-गौरव विशेषत: अर्थान्त-रन्यास की योजना में प्रकट होता है। मौलिक चिन्तनशील कवि ही अपनी प्रतिभा के प्रताप से नूतन विचारों को अर्थान्तरन्यासमुखेन व्यक्त किया करता है—ऐसा ही किया है कालिदास ने, और इसी के महाजन रहे हैं भारवि। सार्वभौम एवं सार्वजनीन आभाणकों का इन महाकवियों ने बड़ा प्रयोग किया है। माघकाव्य इस प्रकार की सदुक्तियों से सराबोर है। कुछ थोड़ी-सी बानगी यहां दी जा रही है। 'सूक्तिसौरभ' प्रकरण में इसका विस्तार से विवेचन

होगा—

(१) 'रावण ने राम को मनुवंश में उत्पन्न, मानवेतर, प्रभविष्णु तथा अपना अन्तकर्ता जानता हुआ भी जानकी को नहीं लौटाया—मानियों का सदा अभिमान ही धन होता है'—

'अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।
मुमोचजानन्नपिजानकींनयः सदाभिमानैकधनाः हि मानिनः ।।' १।३७

(२) 'शरद् ऋतु में हंसी के कूजने से मयूरों की केका फीकी पड़कर पराजित हो गयी थी, मानों इसी ईर्ष्या से मयूरों के पंख झड़ रहे थे। वस्तुतः शत्रुजनित पराभव अतिशय असह्य होता है'—

'तनुरुहाणि पुरो विजितध्वनेर्धवलपक्ष-विहंगम-कूजितैः ।
जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ।।' ६।४५

(३) 'विधि के विपरीत हो जाने पर अनेक-साधनसम्पन्नता भी निष्फल हो जाती है। अस्त को पहुँचते दिनपति को सम्भालने में उनके सहस्रकर (किरणें) भी न समर्थ हो सके—

'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति वहुसाधनता ।
अवलम्वनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ।।' ९।६

निदर्शना—माघ की निदर्शना भी रमणीयता के साथ सादृश्य की अभिव्यक्ति करती है। रैवतक-वर्णन के प्रसंग में उनकी इस निदर्शना की शोभा देखने योग्य है—प्रातःकाल उर्ध्वरश्मिजाल फैलाये सूर्य के उदय होते तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहते यह पर्वत दोनों पार्श्वों में दो लटकते घण्टों से युक्त गजेन्द्र की शोभा धारण करता है'—

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नियाति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ।।' ४।२०

इसी निदर्शना के वैशिष्ट्य पर माघकवि को सहृदयों ने 'घण्टामाघ' उपाधि दे दी थी।

सन्देह—उभयपक्ष में दोलायित चित्तवृत्ति का सुन्दर उदाहरण सन्देह में दिखाई पड़ता है। जलकेलि-वर्णन के प्रसंग में माघ कवि कहते हैं—

'किसी को यह सन्देह होता है कि सरोवर में वह सरोज है अथवा युवती का मुखमण्डल सुशोभित हो रहा है। किन्तु उसी क्षण सरोजों में न रहने वाले विब्बोकों (कटाक्षादिद्वारा सविलास अनादर-चेष्टाओं) के द्वारा निश्चय कर लिया (कि यह मुख ही है)'—

'किं तावत् सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासतेयुवत्याः ।
संशय्यक्षणमितिनिश्चिकाय कश्चिद्बिब्बोकैर्बकसहवासिनांपरोक्षैः ।। ८।२९

दृष्टान्त—माघ के अलंकारसौष्ठव के प्रसंग में एक उदाहरण दृष्टान्त अलंकार का अनुपयुक्त न होगा। शिशुपाल के दुर्दुरूट दुर्मुख दूत को श्रीकृष्ण का संकेत पाकर सात्यकि भर्त्सना करते हुए कहते हैं—

'युधिष्ठिर की सभा में गाली देते हुए भी शिशुपाल को केशव ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिंह मेघ-गर्जन के प्रति प्रतिगर्जन करता है, शृगाल के रोने पर नहीं'—

'प्रतिवाचमदत्तकेशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुतेघनध्वनिं न हि गोमायुरुतानिकेसरी ।।' १६।२५

स्वभावोक्ति—काव्य की उक्तियों को तीन वर्गों में बांटा जाता है। रसोक्ति, वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति। रसोक्ति तथा वक्रोक्ति की कुछ बानगी तो ली गई। अब स्वभावोक्ति की सूक्ष्मता भी देखनी अवसरोपयुक्त होगी। माघ स्वभावोक्ति में भी बड़े निपुण सिद्ध हुए हैं। रैवतक पर पड़ाव पड़ रहा है। 'कोई पहले से पहुँचकर कुछ स्थान ले लेता है। बाद में वहाँ आने वाले दूसरे सैनिकों को नहीं ठहरने देता। साथ ही, दूसरी ओर जाने वाले अपने आत्मीयों को हाथ उठाकर प्लुत स्वर में शीघ्र बुलाता है'—

'अग्रेगतेनवसतिंपरिगृह्य रम्यामापात्यसैनिकनिराकरणाकुलेन ।
यान्तोऽन्यतःप्लुतकृतस्वरमाशुदूरादुद्बाहुना जुहुविरेमुहुरात्मवर्ग्याः ।।'
५।१५

माघ ने पशुओं की स्वाभाविक चेष्टाओं का भी अतिसूक्ष्म निरीक्षण किया है। सेना में सम्मिलित हाथी, घोड़ा, ऊँट, खच्चर, गधा सभी की चेष्टा माघ की चितेरी दृष्टि की परिधि में आ गई है।

'ऊंची हथिनी किस प्रकार अपने शरीर के अगले भाग को ऊँचा कर पीछे के भाग को पैर मोड़ कर झुकती है, मानों कोई पर्वत आकाश में उड़ने को है, और पीलवान को अपने मुड़े पैरों पर से होकर ऊपर चढ़ा लेती है'—

'उत्क्षिप्तगात्रः स्मविडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् ।।' १२।५

इसी तरह 'घुड़सवार पहिले घोड़ों को हाथ से मन्द-मन्द सहलाते हैं। घोड़े अपने शरीर को कम्पित करते हैं। फिर लगाम पकड़े एक हाथ जीन पर रख कर बड़ी फुर्ती से सवार हो जाते हैं—

'स्वैरं कृतास्फालनलालितान्पुरः स्फुरत्तनून् दर्शितलाघवक्रियाः ।
वंकावलग्नैकसवल्गपाणयस्तुरंगमानारुरुहुस्तुरंगिणः ।।' १२।६

और ऊँट का यह हाल है कि 'लम्बे मार्ग के लिए सवार चढ़कर जब तक ठीक से आसन नहीं बना लेता तब तक वह वेग से उठकर बेरोक चल देता है'—

'अह्लाय यावन्न चकार भूयसेनिषेदिवानासनबन्धमध्वने।
तीव्रोत्थितास्तावदसह्यरंहसोविश्रृंखलंश्रृंखलकाः प्रतस्थिरे॥' १२।७

'और उठना चाहते हुए नकेल पकड़कर किसी प्रकार रोके गए ऊंट पर जब काठी रक्खी जा रही है तो वह मुंह फैलाये आधी चबाई कौर को बाहर गिराता हुआ विकृत रूप से चिल्लाता है और अपना 'रवण' नाम यथार्थ करता है।'

'उत्थातुमिच्छन् विधृतः पुरोबलान्निधीयमानेभरभाजियन्त्रके।
अर्धोज्झितोद्गारविझर्झरस्वरः स्वनाम निन्येरवणः स्फुटर्थताम्॥' १२।६

इसी तरह, 'लद्दू बैल को नाथ से पकड़ा गया है, फिर भी वह सींगों को झटकता हुआ, सुसुकारता हुआ पुट्ठों को झटकता है, और ऊपर रखने के लिए उठाई गई पलाँदी को अपने ऊपर रखने नहीं देता है—

'नस्यागृहीतोऽपि धुवन् विषाणयोर्युगं ससूत्कारविवर्तितत्रिकः।
गोणीं जनेनस्म निधातुमुद्धृतामनुक्षणं नोक्षतरः प्रतीच्छति॥' १२।१०

रास्ते में श्रीकृष्ण ने गायों को दुहते लोगों को देर तक देखा। आगे पैर से बंधे बछड़ों को वे गायें स्नेह से चाट रही थीं। दुहने वाले दोहनी अपने घुटनों के बीच सम्हाले थे। दूध की धार की ध्वनि धीरे-धीरे बढ़ती जाती थी—

'प्रीत्या नियुक्तांल्लिहतीस्तनंधयान्निगृह्यपारीमुभयेन जानुनोः।
वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः॥'
१२।४०

पद-लालित्य

माघ में दण्डी का-सा पदलालित्य कहा जाता है—'दण्डिनः पदलालित्यम् ।' लालित्य में माधुर्यगुण सहजरूप से विद्यमान रहता है। माघ रसभाव के अनुरूप गुणों का आधान करते हैं—उनमें न केवल माधुर्य है न केवल ओज और न केवल प्रसाद ही। सब यथावसरसुप्रयुक्त हैं। इतनी प्रौढ़ि के साथ पद परस्पर संगत होते हैं कि उन्हें परिवर्तित किया ही नहीं जा सकता। माधुर्य, ओजस् तथा प्रसाद तीनों की अभिव्यक्ति एक विशेष संगीत के साथ होती है। चाहे जिस गुण की अभिव्यंजक हो पदावली संगीतमयीनृत्य-सी करती ही चलती है। जैसे, हिरण्यकशिपु के भय से भीत देवताओं के वर्णन में—ओजोगुण के साथ—

(१) 'पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं वलानि शूराणि घनाश्चकञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानिनाकिनां गणैर्यमाशंक्य तदादि चक्रिरे ।।' १।३५

और उसी तरह रावण की अभिमानिता के वर्णन में—ओजोगुण के साथ—

(२) 'अमानवं जातमजंकुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।
मुमोचजानन्नपि जानकींनयः सदाभिमानैकधनाहि मानिनः ।।' १।६७

माधुर्य की अभिव्यक्ति में तो पद लालित्य रहती ही है। माधुर्य में ईर्ष्या की अभिव्यक्ति माघ ने किस कौशल के साथ ललितपदों के बीच 'र्' 'घ' का चुभता कांटा रखते हुए किया है :

'यां-यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव ।
निःशंकमन्याःसममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुंकटाक्षैः ।।' ३।१६

श्रीकृष्ण-सेना किस प्रकार कच्छ प्रदेश में जहाँ तालीवन का समीर केतकी के पत्तों को सीमन्तित करता बहता है, पहुँचा इसका वर्णन ऐसे ललित पदों में किया जा रहा है मानो पवन ही सनक रहा है—

'उत्तालतालीवनसंप्रवृत्तसमीरसीमन्तितकेतकीकाः ।
आसेदिरे लावणसैन्धवीनां चमूचरैः कच्छभुवां प्रदेशाः ।।' ३।८०

और शृंगार-वर्णन के प्रसंग में तो पदों से स्वयं स्वरलहरी-सी गूंजती सुनाई पड़ती है, जैसे—

(१) 'या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः
सारतरागमनायतमानम् ।
तेन सहेह बिभर्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम् ॥' ४।४५

(२) मधुकरी का मधुर गुंजन पदावली में मुखरित हो रहा है—
'मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृतानिभृताक्षरमुज्जगे ॥' ६।२०

यमक की योजना से पद-माधुर्य तो बढ़ता ही है। यद्यपि शृंगार रस में यमक को बहुत उपयोगी नहीं कहा गया है। किन्तु पदमाधुर्य पैदा करने में उसे श्रेय दिया ही जाता है। वसन्तवर्णन में कवि यमक का मधुर उपयोग करता है—

'नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्ससुरभिसुभिसुमनोभरैः ॥' ६।२

ये उदाहरण तो स्थालीपुलाकन्याय से दिये गए हैं। वस्तुतः माघ के श्लोकों में एक पद दूसरे से ऐसी संगति करता है, कि, कहीं भी देखा जाए, सर्वत्र पदशय्या अत्यन्त समस्पर्श लगती है। कोई भी पद छन्दः पूर्ति के लिए नहीं रक्खा गया है। पहले पद के बाद अगला पद स्वतः प्रस्तुत हो जाता है। सम्पूर्ण माघ-काव्य प्रौढ़ पदलालित्य का अनुपम उदाहरण है, जिसे पढ़ते समय यह बलात् अनुभूत होने लगता है कि यह किसी ऐसे महाकवि की लेखनी से प्रसूत है, जिसकी काव्य-प्रौढ़ि के समक्ष स्वयं काव्य-देवता भी नतमस्तक रहे होंगे, सम्पूर्ण व्याकरण एवं कोष की वैभवराशि जिसके चरणों पर लोटती रही होगी, सम्पूर्ण अलंकारशास्त्र जिसकी भृकुटि-विलास से नाचता रहा होगा।

अर्थगौरव

माघ में भारवि का-सा अर्थगौरव माना जाता है—'भारवेरर्थगौरवम्'। वैसे माघ ने वस्तुवर्णन से आपूरित अपने महाकाव्य में जो अभिनव कल्पनाएँ की हैं तथा जो अर्थालंकारों की योजनायें की हैं वे सब उनके अर्थगौरव के ही निदर्शन हैं। कोई भी श्लोक कहीं से उद्धृत किया जाए वह अर्थभार से गुरुतम ही मिलेगा। उदाहरणार्थ—रावण के अद्भुत साहस का वर्णन करते हुए नारद कहते हैं—

'जिस रावण ने त्रैलोक्य का स्वामी बनने की इच्छा से शिव के प्रति अनुरागातिरेक में अपने दशम सिर को भी काटना चाहा, और जब इस पर उसकी कामना के अनुरूप ही पिनाकी प्रसन्न हो गए तो साहसप्रेमी उसने उनके प्रसाद को भी विघ्न-सा माना—

> 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
> अतर्कयद् विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशंपिनाकिनः॥' १।४६

रावण के साहस तथा शिवशक्ति का इससे बढ़कर बयान नहीं किया जा सकता।

द्वारिका से श्रीकृष्ण की सेना निकली इसका वर्णन माघ मालोपमा द्वारा करते हैं—'जैसे विष्णु के अंग से प्राणी निकले, जैसे शम्भु के जटाजूट से गंगा की धाराएँ निकलीं तथा जैसे विधि-मुख से श्रुतियाँ (वेद-ऋचायें) निकलीं, उसी प्रकार उस नगर से श्रीकृष्ण की सेनाएँ निकलीं—

> 'प्रजाइवांगादरविन्दनाभेः शंभोर्जटाजूटतटादिवापः।
> मुखादिवाथश्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः॥' ३।६५

इन उपमाओं द्वारा क्रमशः सेना की असंख्यता, बलवत्ता तथा अजेयता की अद्भुत व्यंजना कवि ने की है। इसी प्रकार प्रायः सभी अलंकार किसी-न-किसी सुन्दर व्यंग्य अर्थ के गौरव से मण्डित है। साथ ही अर्थान्तरन्यास में जो सामान्य सूक्तियां निहित हैं, वे कवि की मौलिक चिन्तनशीलता एवं सूक्ति-कल्पना-प्रतिभा को अतिशय प्रमाणित करती हैं। सूक्ति-कथन का सामर्थ्य उच्चकोटि के महाकवि में ही दिखाई पड़ती है—सब में नहीं। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष तथा भवभूति जैसे मूर्धन्य कवि-शिरोमणियों की ही कृतियों में ऐसी सूक्ति-सुषमा देखने को मिलती है।

सूक्ति-सौरभ

अपने सारस्वत चक्षु से कवि जगद्गत सभी भावों का साक्षात्कार कर लेता है। माघ की यह सूक्ति-कल्पना-क्षमता हम उनके अर्थान्तर-न्यासों से कुछ इस प्रकार एकत्र कर सकते हैं :

१. गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्तिनापुण्यकृतां मनीषिणः १।१४
२. ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावाहिनितान्तमर्थिनः ।। १।१७
३. सतीवयोषित् प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येतिभवान्तरेष्वपि । १।७२
४. शुभेतराचारविपक्त्रिमापदोनिपातनीया हि सतामसाधवः ।। १।७३
५. ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि । २।१२
६. महीयांसः प्रकृत्यामितभाषिणः ।। २।१३
७. बद्धमूलस्य मूलंहि महद्वैरतरोःस्त्रियः । १२।३८
८. कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ।। २।४०
९. सर्वःस्वार्थसमीहते ।। २।६५
१०. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः ।। ४।१७
११. सर्वः प्रियः खलुभवत्यनुरूपचेष्टः ।। ५।६
१२. सर्वोहि नोपनतमप्युपचीयमानंवर्धिष्णुमाश्रयमनागतमप्युपैति ।। ५।१४
१३. नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ।। ५।४२
१४. नैवात्मनीनमथवाक्रियते मदान्धैः ।। ५।४४
१५. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्वन सिद्धिमेति ।। ५।४७
१६. परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ।। ६।४५
१७. अभिराद्धुमादृतानां भवतिमहत्सु न निष्फलः प्रयासः ।। ७।१
१८. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव ।। ७।३८
१९. भवतिहि विक्लवतागुणोऽगनानाम् ।। ७।४३
२०. किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ।। ७।५२
२१. न परिचयो मलिनात्मनांप्रधानम् ।। ७।६१
२२. औचित्यं गणयति को विशेषकामः ।। ८।१०
२३ उद्धतः क इव सुखावहः परेषाम् ।। ८।१८

२४. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेतिवहुसाधनता ॥ ९।६
२५. अपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥ ९।१२
२६. भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः ॥ १०।५
२७. स्वां मदात् प्रकृतिमेति हि सर्वः । १०।१८
२८. दुस्त्यजः खलु सुखादपिमानः ॥ १०।२१
२९. निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतुः । १०।२८
३०. न क्षमं भवतितत्त्वविचारेमत्सरेणहृतसंवृति चेतः ॥ १०।३५
३१. मदमूढबुद्धिषु विवेकिताकुतः ॥ १३।६
३२. महतीमपिश्रियमवाप्यविस्मयः सुजनो न विस्मरति जातु किंचनः ॥ १३।६८
३३. परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् । १५।१
३४. स्फुटमापदां पदमनात्मवेदिता ॥ १५।२२
३५. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ॥ १५।४१
३६. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहिगोमायुरुतानिकेसरी ॥ १६।२६
३७. अरुच्यमपिरोगघ्नंनिसर्गादेवभेषजम् ॥ १९।८९
३८. उपकृत्यनिसर्गतः परेषामुपरोधं नहि कुर्वतेमहान्तः ॥ २०।७४

छन्दोयोजना

माघ के शिशुपालवध में कुल १६४५ श्लोक २० सर्गों में रचे गए हैं। इनमें पन्द्रहवें सर्ग के ३४ प्रक्षिप्त श्लोक, जिन पर मल्लिनाथ ने टीका नहीं की है, किन्तु वल्लभदेव ने की है, तथा ग्रन्थान्त में कविवंशवर्णन के ५ श्लोकों को जोड़ देने पर, कुल श्लोकों की संख्या १६८४ हो जाती है। माघ ने इन श्लोकों में कुल ४६ छन्द प्रयुक्त किये हैं, जबकि कालिदास ने अपने रघुवंश तथा कुमारसंभव में केवल १८ छन्दों का तथा भारवि ने अपने किराताजुनीय में २४ छन्दों का प्रयोग किया है। किरात में भारवि ने एक सर्ग में कुल १६ विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, तो माघ ने एक सर्ग में २२ छन्दों तक का प्रयोग कर डाला है। वैसे प्रत्येक सर्ग में परम्परानुसार माघ ने भी प्रायः एक प्रकार का ही छन्द प्रयुक्त किया है। केवल चतुर्थ सर्ग में २२ छन्द प्रयुक्त किये हैं।

छन्दों का प्रयोग करते समय माघ की दृष्टि वर्ण्यविषय के औचित्य की उपेक्षा नहीं करती, उसी की दृष्टि से वे प्रायः छन्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे नीति-विचार तथा युद्धवर्णन में अनुष्टुप् का प्रयोग करते हैं। ऋतुवर्णन के प्रसंग में द्रुतविलम्बित वन-विहार में पुष्पिताग्रा, जलक्रीड़ा में प्रहर्षिणी, चन्द्रोदयादि-रात्रिवर्णन में प्रमिताक्षरा, सुरतविलास में स्वागता, प्रभातवर्णन में मालिनी का प्रयोग करते हैं। रैवतक के वर्णन में पर्वत के वैचित्र्य को शब्द-चित्रों द्वारा प्रदर्शित करने की भावना से माघ अनेक छन्दों का प्रयोग कर डालते हैं। उनके प्रयुक्त छन्दों का लेखा कुछ इस प्रकार है :

छन्द	सर्ग	श्लोक-संख्या
१. अनुष्टुप्	२,१९	२३३
२. आख्यानकी	वंशवर्णन में	१
३. अतिशायिनी	८	१
४. आर्या	४	२
५. इन्द्रवज्रा	४	४
६. उद्गता	१५	९४

७.	उपेन्द्रवज्रा	४	४
८.	उपजाति	३,४,६,१२,१५,१६ तथा कविवंश-वर्णन में	१८२
९.	औपच्छन्दसिक	२,६,९,१६,२०	८३
१०.	कुररीरुता	४	१
११.	जलोद्धतगति	४	१
१२.	दोधक	४	१
१३.	पंक्तकावली अथवा धृतश्री	३	१
१४.	पृथ्वी	४	१
१५.	प्रभा	६	१
१६.	प्रमिताक्षरा	४,६	८३
१७.	भ्रमरविलसित	४	१
१८.	मत्तमयूर	४,६	२
१९.	महामलिक	११	१
२०.	मेघविस्फूर्जित	२०	१
२१.	रमणीयक	१३	१
२२.	कुटजा	६	१
२३.	जलधरमाला	४	१
२४.	तोटक	६	१
२५.	द्रुतविलम्बित	२,४,६	७१
२६.	पथ्या	४	१
२७.	पुष्पिताग्रा	१,७,४	७८
२८.	प्रभा	६	१
२९.	प्रहर्षिणी	४ ८,९,१४	७७
३०.	मञ्जुभाषिणी	४,६,१६,	१
		४,१३	७९
३१.	मन्द्राक्रान्ता	७,९,१८	३
३२.	मालिनी	२,४,७,१०,११,२०	७२
३३.	रथोद्धता	१,१४	८६
३४.	रुचिरा	१७	६८
३५.	वंशपत्रपतित	४	१
३६.	वसंततिलका	४,५,६,१४,२०	८९

३७. शार्दूलविक्रीडित	१,१६,१७	५
३८. शिखरिणी	५	६
३९. स्रग्विणी	४	१
४०. हरिणी	१२	१
४१. वंशस्थ	१,६	७४
४२. वैतालीय	१६	७६
४३. वैश्वदेवी	१६	१
४४. शालिनी	५,१६,१८	८१
४५. स्रग्धरा	१५	१
४६. स्वागता	६,१०	६१

इनमें धृतश्री या पंचकावली का तो माघ के 'तुरगशताकुलस्य' (३।८२) के अतिरिक्त संस्कृतवाङ्मय में सम्भवतः कोई अन्य उदाहरण ही नहीं दिया गया है। मानों इसी श्लोक के आधार पर उसका लक्षण किया गया है।

व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा परिष्कृत प्रतिभा काव्य-समुद्भव का हेतु मानी गयी है (व्युत्पत्त्यभ्याससंस्कृता प्रतिभास्यहेतुः—काव्यानुशासन)। व्युत्पत्ति का प्रतिभा से मणिकांचन संयोग होने पर ऐसे काव्यालंकार की रचना होती है, जो सदा विदग्धकण्ठाभरण बनता है। व्युत्पत्ति के अन्तर्गत विश्व का सारा ज्ञानभण्डार आ जाता है ? फिर भी विभिन्न आचार्यों ने परिगणन के लिए कुछ प्रधान विभिन्न विद्याओं का उल्लेख किया है—राजशेखर, क्षेमेन्द्र, मम्मट, वाग्भट सभी की गणना अपनी-अपनी है। वस्तुतः कविज्ञान की इयत्ता नहीं—कोई शास्त्र, कोई विद्या, कोई कला ऐसी नहीं जो काव्यांग न बने। कवि का भार महान् होता है। अतएव उसे ब्रह्मा के पर्यायवाची 'कवि' की उपाधि मिली है। अस्तु।

माघ में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति भी बेजोड़ थी। वेद, वेदांग, दर्शन, पुराण, व्याकरण, राजनीति, आयुर्वेद, संगीत, पशु-विज्ञान, ज्योतिष, काम-शास्त्र, पाकविद्या आदि सबके वे मर्मज्ञ निष्णात विद्वान् समझ पड़ते हैं। उदाहरण के लिए उनके कुछ व्युत्पत्ति-प्रतीक श्लोकों को उद्धृत किया जा सकता है :

मीमांसा—उनकी युधिष्ठिर-यज्ञ की विवेचना वेद एवं मीमांसा में उनकी विशेषज्ञता को प्रमाणित करती है। ऋत्विज लोग किस प्रकार अनुवाक्य याज्या द्वारा देवतोद्देश्य से हवन करते थे—

> 'शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
> याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्यदेवताम्॥' १४।२०

किस प्रकार सामवेत्ता हस्तसंचालन द्वारा सात स्वरों की कल्पना के साथ सामगान करते थे और होता अध्वर्यु आदि ऋक् एवं यजुष् का गान करते थे—

> 'सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ।
> तत्रसूनृतगिरश्चसूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत॥' १४।२१

और किस प्रकार प्रणयनादि-संस्कृत अग्नि में दर्भमय कांचीदाम बांधे यजमान-पत्नी द्वारा देखे जाते हुए हविष् का ऋत्विग् लोग हवन कर रहे थे—

'बद्धदर्भमयकांचिदामया वीक्षितानि यजमान-जायया ।
शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते तैर्हवींषिजुहवांबभूविरे ।।' १४।२२

व्याकरण—माघ महावैयाकरण कहे जाते हैं। उनकी व्याकरण-विषयक विशेषज्ञता तो उनके बीहड़ प्रयोगों से स्वतः प्रमाणित होती है, जैसे—

'पुरीमवस्कन्दलुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ।।' १।५१

यह श्लोक माघ के लकार-प्रयोग की सूक्ष्मता एवं विशेषज्ञता को प्रमाणित करता है। किन्तु कहीं-कहीं उन्होंने व्याकरणशास्त्र के सिद्धान्तों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। जैसे—

(१) उदात्त स्वर एक पद में अन्य सभी स्वरों का निघात (अनुदात्त) कर देता है—'निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव' (१।९५)

(२) 'मदिरामद ने प्रमदाओं के चिरप्रसुप्त विभ्रमविलास को ऐसे प्रकट कर दिया (जगा दिया) जैसे उपसर्ग धातु के गूढ़ अर्थ को—

'विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ।।' १०।१५

(३) वेद में सभी विभक्तियों एवं लिंगों में तो मन्त्र कहे नहीं गये हैं। उन्हें यज्ञकर्म में प्रयोग करने वाले ऊहकुशल (व्याकरणज्ञ) विद्वान् यथोचित विभावित एवं लिंग में परिणत कर लेते थे—

'नाञ्जसानिगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे ।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन् मन्त्रमूहकुशला प्रयोगिणः ।।' १४।२३

जैसा कि महाभाष्यकार ने व्याकरणाध्ययन के प्रयोजनों का निरूपण करते हुए 'रक्षोहागमलध्वसंदेहाः प्रयोजनम् ।' के अन्तर्गत ऊह के व्याख्यान में कहा है।

(४) जहां दो समासों का एक ही पद में सन्देह होता था—यद्यपि क्रियाफल में दोनों में अत्यधिक अन्तर था—वहां वैयाकरण लोग स्वर विशेष के प्रयोग द्वारा समासविशेष के विग्रह का निश्चय कर लेते थे—

'संशयाय दधतोःसरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति ।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवसमुः स्वरेणते ।।' १४।२४

(५) वह समरांगण, जिसमें सुहृत्, स्वामी, पितृव्य, भ्राता, मातुल निपातित थे, विद्वानों को ऐसा लगता था, जैसे पाणिनीयव्याकरणाजिर हो जहां ये सभी शब्द निपातित ही माने जाते हैं।

'निपातित-सुहृत्-स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम् ।
पाणिनीयमिवालोकिधीरैस्तत्समराजिरम् ।।' १९।७५

सांख्य—विभिन्न उपनिषदों एवं दर्शनों के अनेक सिद्धान्तों के उल्लेख शिशुपालवध में मिलते हैं। जैसे—

२. द्वारिका में नरशिखित्रयी की मन्त्रणा-सभा में बलराम ससंरंभ अपनी सलाह देते हुए श्रीकृष्ण से कहते हैं—

सेना द्वारा प्राप्त की गई विजय फलभागी साक्षी रूप (बिना कुछ किए भी) तुम्हें वैसे ही प्राप्त हो, जैसे सांख्य-शास्त्र में बुद्धि अथवा महत्त्व के भोग आत्मा को कहे जाते हैं—

'विजयस्त्वयिसेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।
फलभाजिसमीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोगइवात्मनि ।।' २।५९

३. इसी सांख्यसिद्धान्त की प्रतिध्वनि युधिष्ठिर के यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा किये गये यज्ञानुष्ठान का फल किस प्रकार धर्मराज को प्राप्त हो रहा था इसके निरूपण में सुनायी पड़ती है—

'तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः ।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्‌वृत्तिभाजिकरणे यर्थात्विजि ।।' १४।१९

(१) प्रथम सर्ग में ही नारद श्रीकृष्ण के विनय-प्रदर्शन पर निवेदन करते है—चित्तवृत्तियों पर संयम करने वाले को अध्यात्मदृष्टि से किसी प्रकार गोचर होने वाले आपको पुराविदों ने प्रकृति से पृथक्, विकृतियों से बाह्य पुरातन पुरुष कहा है।

'उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन ।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनंत्वां पुरुषं पुराविदः ।।' १।३३

योग—(१) रैवतक पर्वत पर किस प्रकार यौगीजन मैत्रीकरुणामुदिता आदि द्वारा चित्तप्रसाधन कर, अविद्या-अस्मिता आदि क्लेशों को क्षीण कर, सबीज समाधि अर्थात् प्रकृति पुरुष का विवेक प्राप्त कर उस ख्याति (ज्ञान) से भी निवृत्त होना अर्थात् स्वयंप्रकाश पुरुष में स्थित होना चाहते हैं—

'मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदोविधाय
क्लेशप्रहाणमिहलब्धसबीजयोगाः ।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वांछन्ति तामपि समाधिभृतोनिरोद्धुम् ।।' ४।५५

(२) युधिष्ठिर की सभा में श्रीकृष्ण की भगवत्ता का गान करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं—इन्हें ज्ञानियों ने नित्य, सर्वज्ञ अनादि भी प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से मानव शरीर धारण करने वाले, क्लेशकर्मविपाकादि से असंस्पृष्ट परम पुरुष ईश्वर माना है—

'सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षयावपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥' १४।६२

उपनिषद्—शिशुपालवध में अनेक उल्लेख औपनिषदिक दर्शन के सिद्धान्तों के भी मिलते हैं। जैसे—

(१) नारद श्रीकृष्ण की महत्ता का स्तवन करते हुए कहते हैं कि 'विषयाभिलाष के प्रतिरोधक दुर्गम मोक्षमार्ग पर चलने वाले मनस्वी के लिए आप ही वह गन्तव्य स्थान है, जहां से पुनः प्रत्यावृत्ति नहीं होती'—

'उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयिषोमोक्षपथंमनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥' १।३२

(२) फिर भीष्म श्रीकृष्ण के अतिमानव स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं—'योगीजन आदर के साथ जिन्हें अद्वैत, ध्यानयोग्य, बुद्धि के लिए भी अगोचर, स्तुति के योग्य भी अवाग्गोचर, उपासना के योग्य (नेदिष्ठ) भी अतीव दूरवर्ती (दविष्ठ) मानते हैं'—

'ध्येयमेकमपथे स्थितं धिय; स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम्।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद् दूरवर्तिनमतीव योगिनः॥' १४।६०

बौद्ध-दर्शन—एक स्थान पर माघ ने बौद्ध दर्शन के मूल आध्यात्मिक सिद्धान्त का उल्लेख किया है। 'जैसे शरीर में रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा तथा संस्कार नाम के पांच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मानामक कोई अन्य वस्तु नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के लिए सहाय-साधनोपाय आदि सिद्धि-पंचांग के अतिरिक्त कोई अन्य मन्त्र नहीं है—

'सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपंचकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥' २।२८

ज्योतिष—जैसे चन्द्रमा के दोनों पार्श्व (द्वितीय एवं द्वादश स्थान) में सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के रहने पर दुरुधरा नामक योग होने से चन्द्रमा की शोभा एवं शुभकारिता बढ़ जाती है, वैसे ही रथ पर भीम तथा अर्जुन के बीच स्थित श्रीकृष्ण की अतिशयशोभा हो रही थी—

'पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोचिरुचिरेणचक्रिणा।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितंदुरुधराख्यमिन्दुना॥' १३।२२

संगीत—माघ संगीत के सिद्धान्त एवं प्रयोग दोनों पहलुओं के विशिष्ट मर्मज्ञ थे। उनके काव्य में प्रयुक्त पदावलियां नृत्य करती-सी चलती हैं। संगीत के सिद्धान्तों का भी उन्होंने कहीं-कहीं उल्लेख कर ही दिया है।

(१) 'आकाश से उतरते हुए नारद अपनी महती-नामक वीणा को बार-बार देख रहे थे, जिसमें वायु के आघात से पृथक्-पृथक् विभिन्न श्रुतिमण्डलों वाले स्वरों से ग्रामविशेषों की मूर्च्छनाएं स्वतः स्फुट हो रही थीं'—

'रणद्भिराघट्टनयानभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः ॥' १।१०

यहाँ इस प्रकार श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना की चर्चा संगीतशास्त्र का विशेषज्ञ ही कर सकता था ।

(२) फिर प्रभात-वर्णन के प्रसंग में 'रक्तकण्ठ वैतालिकों ने श्रुतिबहुल वीणादिवाद्ययुक्त पंचम एवं ऋषभ से रहित गान द्वारा रात्रि का अवसान श्रीकृष्ण को सूचित किया'—

'श्रुतिसमधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्यषड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमितिरात्रेर्मागधामाधवाय ॥'
११।१

इनके अतिरिक्त माघ ने राजनीति (२य सर्ग), काव्यशास्त्र (२०।८६,८७'), आयुर्वेद (२य सर्ग), नीतिशास्त्र (२य सर्ग), पुराण, (२।१०७, १४।६८-८६), कामशास्त्र (१०म सर्ग) तथा हस्त्यश्वशास्त्र (५म सर्ग) के भी अनायास उल्लेख किये हैं। वस्तुतः शिशुपालवध के अध्ययन से यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि इसका रचयिता एक असाधारण प्रतिभा एवं अगाधव्युत्पत्ति का महाकवि था, जिसकी प्रौढि का कोई अन्य कवि दृष्टिगोचर नहीं होता ।

आदान

काव्यरचना में कवि जहाँ शास्त्रादि के अध्ययन से अर्जित व्युत्पत्ति का प्रयोग करता है वहां पूर्ववर्ती काव्यों के अध्ययन से भी प्रेरणा लेता है। और जैसे अतीत-कल्पपरम्परा से विचित्र-वस्तु-प्रपंच का आविर्भाव करती हुई भी जगत्प्रकृति नित्य नूतन पदार्थ का निर्माण करती ही चलती है, कभी क्षीण नहीं होती, वैसे ही यह काव्यस्थिति भी अनन्त कवि-वाचस्पतियों की प्रतिभाओं द्वारा उपयुक्त होकर भी कभी क्षीण नहीं होती, प्रत्युत कवि की नूतन व्युत्पत्ति से बढ़ती ही जाती है—(वाचस्पतिसहस्राणां सहस्रैरपियत्नतः। निबद्धा सा क्षयं नैति प्रकृतिर्जगतामिव-ध्व० ४।१०)। अतः पूर्व कवियों के साथ संवाद होना स्वाभाविक है, अनुचित नहीं। पुरातन कवि की रमणीयता को ग्रहण करने से कवि की काव्यवस्तु और अधिक शोभा धारण करती है, पुनरुक्त नहीं लगती, जैसे शशि की रमणीयता लेकर सुन्दरी का मुखमण्डल और अधिक सुशोभित होता है (आत्मनोऽन्यस्य सद्भावे पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि। वस्तुभातितरां तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम्। ध्व० ४।१४) और, जैसे उतने ही वर्णों से अनन्तवाङ्मय की पदावली रची जाती है, और उन्हीं पदों से अनन्त वाङ्मय की रचना होती है, उसी प्रकार पुरातन वस्तुओं को ही नूतन काव्य-योजना में रखने पर वे नूतन ही प्रतीत होती हैं, पुरातन नहीं (अक्षरादिरचनेव योज्यते यत्रवस्तु-रचना पुरातनी। नूतने स्फुरति काव्यवस्तुनि व्यक्त मेव खलु सा न दुष्यति॥ ध्व० ४।१५) अस्तु।

माघ-काव्य के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस पर रामायण-महाभारत के अतिरिक्त तीन पूर्ववर्ती महाकवियों का अधिक प्रभाव पड़ा है—वे हैं कालिदास, भारवि तथा भट्टि। शिशुपालवध में इन्हीं की छाया यत्र-तत्र झलकती है—पदयोजना में, वस्तुयोजना में तथा भावनिष्पत्ति में भी।

कालिदास

पद, भाव, छन्द तथा बहुत कुछ प्रबन्धयोजना में भी माघ ने कविकुलगुरु से कुछ शिक्षा ली है।

रघुवंश के तेरहवें सर्ग में राम सीता से समुद्र की महत्ता का गान करते हुए कहते हैं—'युगान्त के समय योगनिद्रा के अभ्यासी पुराणपुरुष विष्णु समस्त लोकों को अपने उदर में समेट कर इसी समुद्र में शयन करते हैं।' (अमुंयुगान्तोचित् योगनिद्रः संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते ।। रघु०, १३।६)

शिशुपालवध में—जब समुद्र ने द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ जाते समय अपनी गोद में सोने वाले युगातन्बन्धु श्रीकृष्ण को आया देखा तो हर्षातिरेक में उत्तुंग तरंगरूप बाहुओं को फैलाकर मानो उनकी अगवानी की—(तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धु मुत्संगशय्याशयमम्बुराशिः । प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोद-प्रसारितोत्तुगतरंगबाहुः ।।)
शि०व० ३।७८

रघुवंश में आकाश-गंगा की तरंगों के सम्पर्क से शीतल ऐरावत-मदसुरभि आकाशवायु सीता के मुख पर दोपहर की गर्मी से उठीं पसीने की बूंदों को दूर कर रहा है। (असौमहेन्द्र-द्विपदानगन्धि स्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः । आकाशवायु र्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान् मुखेते ।। रघु० १३।२०)। और शि०व० में समुद्र के तट से जाते हुए श्रीकृष्ण की पसीने की बूंदों को जल-सीकरपूर्ण (शीतल) इलाइची की लताओं के सम्पर्क से सुगन्धित नभस्वान् (आकाशवायु) पोंछ रहा था। (उत्संगिताम्भःकणकोनभस्वानुदन्वतः स्वेदलवान्ममार्ज । तस्यानुवेलं व्रजतोऽधिवेलमेलालतास्फालनलब्धगन्धः ।। ३।७९)। यहां भाव के साथ 'स्वेदलवान्' पद भी माघ ने लिये हैं।

रघुवंश के नवम सर्ग में कालिदास ने द्रुतविलम्बित छन्द में यमक का मनोरम जोड़ा बैठाया है। माघ को यह योजना इतनी आकर्षक लगी कि उन्होंने अपने छठे सर्ग में छहों ऋतुओं का वर्णन उसी प्रकार द्रुतविलम्बित छन्द में तथा यमक के पद-माधुर्य के साथ किया।

कहीं-कहीं तो माध ने पदावलियां भी कालिदास की ही रखी हैं :

कालिदास	माघ
१. स्मरमते रमते स्मवधूजनः (रघु० ६।४७)	स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः ।।६।६
२. ययावनुद्घातसुखेन मार्गम् (रघु० २।७२)	ययावनुद्घातसुखेन सोऽध्वना ।।१२।२
३. प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गंगाम् (रघु० १६।३३)	प्रतीपनाम्नीः कुरुतेस्म निम्नगाः १२।५७
४. गंगां निषादाहृतनौविशेषस्ततार सन्धामिव सत्य-सन्धः (रघु० १४।५२)	तीर्त्वाजिवेनैवनितान्तदुस्तरां नदीं प्रतिज्ञामिव तां गरीयसीम् ।। १२।७४

५. आकुमारकथोद्घातम् (रघु० ४।६८)	आकुमारमखिलाभिधानवित् १३।६८
६. स्वमेवमूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः (कु० १।५७)	अष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी ।। १४।१८
७. पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम् । यन्ता गजस्याभ्यपदद् गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ।। (रघु ७।३७)	पत्तिः पत्ति वाहमेयाय वाजी नाग नागः स्यन्दनस्थोरथस्थम् । इत्थं सेना वल्लभस्येव रागाद् अंगेनांगं प्रत्यनीकस्य भेजे ।। १८।२
८. यावत् प्रतापनिधिराक्रमतेन भानुरह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् ।। (रघु० ५।७१)	व्रजतिविषयमक्ष्णामंशुमालीन याव त्तिमिरमखिलमस्तं तावददेवारुणेन ।। ११।२५
९. स्त्रीणां प्रियालोकफलोहि वेशः (कु० १७।२२)	कामिना मण्डनश्रीर्वजतिहिसफलत्वं वल्लभालोकनेन ।। (११।३३)
१०. नमोविश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनुबिभ्रते । अथविश्वस्य संहर्त्रेतुभ्यं त्रेधास्थितात्मने (रघु० १०।१६)	पद्मभूरितिसृजन् जगद् रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिंनयन् । संहरन् हरइतिश्रितस्तम स्त्रैधमेवभजसि त्रिभिर्गुणैः ।। १४।६१

रघुवंश के पंचम सर्ग में प्रभातवर्णन में हाथी दोनों करवटों में नींद पूरी कर उठते हैं—(शय्यांजहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः स्तम्बेरमा मुखरश्रृंखलकर्षिणस्ते ।। रघु० ५।७२) तो उसी प्रकार शि०व० में भी एक करवट में सोकर उठा हुआ हाथी पैर में बँधे श्रृंखला के शब्द के साथ दूसरे करवट में पीलवान द्वारा पुनः सुलाया जाता है—

(क्षितितटशयनान्तादुत्थितंदानपंक-
प्लुतबहुलशरीरं शाययत्येप भूयः ।
मृदुचलदपरान्तोदीरितान्दूनिनादं
गजपतिमधिरोहः पक्षकव्यत्ययेन ।।११।७)

रघुवंश के 'इन्दुमती-स्वयंवर' में 'मगधेश्वर परन्तप' द्वारा अपने निरन्तर यज्ञ में इन्द्र को बुलाये रहने के कारण शची प्रोपितपतिका ही बनी रहती है और मन्दारपुष्प का श्रृंगार अपने अलकों में नहीं करतीं—

'क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः । शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यानलकांश्चकार' ।।६।२३
युधिष्ठिर के यज्ञ में भी यही दशा अनेक देवपत्नियों की बताई गयी है—

'तत्रनित्यविहितोपहुतिषुप्रोषितेषु पतिषुद्युयोषिताम् ।
गुम्फिताः शिरसिवेणयो भवन्नप्रफुल्लसुरपादपस्रजः ॥'

शि०व० १४।३०

कुमारसम्भव में शंकर की वरयात्रा के समय शंकर को देखने (कु० ७।५७-६८) तथा रघुवंश में नगर-राजमार्ग पर साथ-साथ जाते समय अज-इन्दुमती को देखने (रघु० ७।५-१५) पुरांगनाओं की चेष्टाओं का जैसा वर्णन कालिदास ने किया है, उसी के आधार पर माघ ने श्रीकृष्ण को देखने इन्द्रप्रस्थ की पुरयोषिताओं की चेष्टाओं का वर्णन किया है (शि०व० १३।३०-३८)।

और जैसे इन्दुमती के स्वयंवर में इन्दुमती के प्रति राजाओं की विविध चेष्टाएं हुई थीं (रघु० ६।१२-१९) वैसे ही इन्द्रप्रस्थ में श्रीकृष्ण को देखकर सुन्दरियों की चेष्टाएं वर्णित हैं। (शि०व० १३।४१-४८)।

भारवि

जो अलंकृत काव्य-शैली भारवि ने चलाई उससे उस युग में काव्य-रचना का मानदण्ड ही बदल गया। भारवि का किरातार्जुनीय एक स्पृहणीय एवं स्पर्धनीय काव्य बन गया। अन्य उदीयमान कवियों की भांति माघ भी उससे प्रभावित एवं आकृष्ट हुए बिना न बचे। उन्होंने अपने शिशुपालवध की रूपरेखा ही बहुत कुछ किरात के अनुरूप बनाई। उनके आदर्श भारवि थे—आदरणीय भी अनुकरणीय भी। दोनों के साम्य का लेखा कुछ इस प्रकार दिया जा सकता है :

किरातार्जुनीय	शिशुपालवध
१. 'श्री' शब्द से ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है।	'श्री' शब्द से ही ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है।
२. प्रतिसर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त हुआ है।	प्रतिसर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द का प्रयोग हुआ है।
३. तृतीय सर्ग में व्यास के आने पर युधिष्ठिर ने उनका श्रद्धा-विनय के साथ स्वागत किया है।	प्रथम सर्ग में ही नारद के आने पर श्रीकृष्ण ने प्रायः वैसे शब्दों में नारद का स्वागत किया है।
४. किरात के समाचार बता देने के पश्चात् युधिष्ठिर, भीम तथा द्रौपदी के बीच राजनीतिक परिसंवाद।	नारद द्वारा इन्द्रसन्देश के पश्चात् बलराम, उद्धव के साथ श्रीकृष्ण की मन्त्रणा में राजनीतिक परिसंवाद।
५. अर्जुन के प्रस्थान के समय मंगलभंगभीरु द्रौपदी अपने	शिशुपाल की सेना में भी अंगना प्रिय को युद्ध के लिए विदा देते समय इसी

	पर्यश्रु नेत्रों के पलक नहीं गिराती थी कि कहीं आंसू न टपक पड़ें—तुषारलेखाकुलितोत्पलाभे पर्यश्रूणीमंगलभंगभीरुः। अगूढभावापि विलोकनेसा न लोचने मीलयितुं विषेहे ॥ कि० ३।६६	प्रकार आंसू नहीं गिरने देती। नमुमोचलोचनजलानि दयितजयमंगलैषिणी। शि०व० १५।८५
५.	चतुर्थसर्ग में शरद्वर्णन।	षष्ठसर्ग में षड्ऋतुवर्णन।
६.	पंचम सर्ग में हिमालयवर्णन	चतुर्थसर्ग में रैवतकवर्णन।
७.	सर्ग ५ तथा १८ में विविध १६ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।	चतुर्थसर्ग में २२ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।
८.	सप्तम सर्ग में शिविर-संनिवेश-वर्णन	पंचमसर्ग में शिविर-संनिवेश-वर्णन।
९.	अष्टमसर्ग में पुष्पावचय-वर्णन।	सप्तमसर्ग में पुष्पावचय-वर्णन।
१०.	अष्टमसर्ग में जलक्रीड़ा-वर्णन।	अष्टमसर्ग में जलक्रीड़ा-वर्णन।
११.	नवमसर्ग में प्रभात-वर्णन	एकादश सर्ग में प्रभात-वर्णन।
१२.	नवमसर्ग में सन्ध्या एवं चन्द्रोदय-वर्णन।	नवम सर्ग म ही सन्ध्या एवं चन्द्रोदय-वर्णन।
१३.	नवमसर्ग में सुरतपानगोष्ठी-वर्णन।	दशमसर्ग में सुरतपानगोष्ठी-वर्णन।
१४.	सर्ग १३ में दुर्वादी शिव-दूत से अर्जुन का वादविवाद	सर्ग १६ में दुर्वादी शिशुपाल-दूत से सात्यकि आदि का वाद-विवाद।
१५.	सर्ग १४ में सेना-संनाह तथा युद्ध-वर्णन।	सर्ग १५,१७ तथा १८ में सेना-सन्नाह एवं युद्ध-वर्णन।
१६.	सर्ग १५ में चित्रालंकार द्वारा युद्ध वर्णन।	सर्ग १९ में चित्रालंकार द्वारा युद्ध-वर्णन।
१७.	हिमालय-वर्णन में यमक का प्रयोग	रैवतक-वर्णन में यमक का प्रयोग
१८.	अर्जुन द्वार शिवस्तुति	भीष्म द्वारा श्रीकृष्णस्तुति

ऐसा प्रतीत होता है मानो 'किरातार्जुनीय' को सामने रखकर अथवा स्मृति-पथ पर निरन्तर प्रतिष्ठित कर माघ ने अपने काव्य का ढांचा बनाया था। यद्यपि माघ की कृति सभी दृष्टियों से अधिक प्रौढ एवं परिष्कृत बनी है, किन्तु भारवि का सहज काव्य-सौन्दर्य अपना अलग ही मूल्य रखता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माघ ने भारवि का जिन-जिन बातों में अनुकरण किया है उन सब में उनसे आगे बढ़ गए हैं। माघ की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा को उनकी व्युत्पत्ति एवं अलंकार-

छन्दोयोजना के अनुपम अभ्यास ने उन्हें महाकवि-पंक्ति में मूर्धन्यस्थान दे दिया है। वे काव्य के लिए सभी आवश्यक तत्वों से सर्वाधिक सम्पन्न समझ पड़ते हैं। शब्दकोष, अर्थकल्पना, अलंकार-योजना, छन्दोरचना, शास्त्रज्ञान, भावनिरूपण-सामर्थ्य तथा संगीत-भावना सभी पहलू माघ में पराकाष्ठा को पहुंचे हुए हैं— उनके सम्मुख सहृदय को न 'रत्नाकर' का विस्तार कुछ मूल्य रखता है, न 'पण्डितराज' की गर्वोक्तियों में भी कुछ तथ्य समझ पड़ता है। अस्तु।

भट्टि

माघ के ऊपर भट्टि का भी शास्त्रीयनिरूपणपाटव प्रभाव डालता समझ पड़ता है। माघ की व्याकरणप्रियता तथा व्याकरण-प्रयोग-प्रदर्शन भट्टि की देन समझ पड़ते हैं। साथ ही कहीं-कहीं श्लोक-भाव भी भट्टि से अनुकृत लगते हैं। जैसे भट्टि का यह श्लोक—

'क्वस्त्रीविषह्याः करजाः क्ववक्षोदैत्यस्यशैलेन्द्रशिलाविशालम्।
संपश्यतैतद् द्युसदांसुनीतं विभेद तैस्तन्नरसिंहमूर्तिः॥' (भट्टि १२।५९)

(अर्थात्—कहां तो स्त्रियों द्वारा न सहने योग्य नाखून, कहाँ पर्वतशिला के समान विशाल एवं कठोर दैत्य हिरण्यकशिपु का वक्षःस्थल ? देवताओं की नीति तो देखो, कि उन्हीं नाखूनों से नृसिंह ने उस वक्षःस्थल को फाड़ डाला !') माघ के इस श्लोक में प्रतिबिम्बित लगता है।

'सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंहसैंहीमतनुं तनुं त्वया।
समुग्धकान्तास्तनसंगभंगुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करेनखैः॥'
(शि०व० १।४७)

(अर्थात्—हे नृसिंह तुमने मुग्धा सुन्दरियों के स्तन-स्पर्श से मुड़ जाने वाले अपने नाखूनों से ही उस हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को चीर दिया था।)

नव-शब्द-प्रयोग-रुचि

माघ की सबसे बड़ी प्रशस्ति नूतन शब्दों के प्रयोग में है, जिसमें वे अत्यन्त कुशल तथा शौकीन माने गये हैं। एक बार प्रयुक्त किये हुए शब्द को वे दुबारा प्राय: नहीं प्रयुक्त करते हैं। यह आभाणक तो प्रसिद्ध ही है कि 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।' जिसका यह अर्थ अधिक संगत लगता है कि माघ के किसी नूतन (नव) सर्ग में जाएं, पुराना शब्द (अनव) प्रयुक्त हुआ नहीं मिलेगा। इससे उनका भाषा पर असाधारण अधिकार प्रमाणित होता है। अपने असाधारण व्याकरण-वैदुष्य के सहारे माघ ने नूतन शब्दों को गढ़ा है, कोषवैभव के सहारे नये पर्याय प्रयुक्त किये हैं और विविध शास्त्रीय व्युत्पत्ति के नाते नये अर्थ में शब्द-प्रयोग का क्षेत्र पाया है। वस्तुत: उस युग के कविमानस में विदग्धपाण्डित्य का तथा शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन एक ग्रन्थि के रूप में घर कर गया था। माघ उससे अछूते नहीं बचे हैं, प्रत्युत सर्वाग्रणी हैं। कहा जाता है कि करीब १८०० नये शब्दों का प्रयोग माघ ने किया है। श्रीकृष्ण के ही उन्होंने प्राय: इतने नाम पर्याय प्रयुक्त किये हैं—

अच्युत	अरविन्दनाभि	माधव	चिरंतनमुनि	बलानुज
अधोक्षज	आदिदेव	वासुदेव	त्रिधामन्	मधुजित्
आदिपुरुष	इन्द्रानुज	विश्वम्भर	दनुसुतारि	मधुद्विष्
उपेन्द्र	उरगारिलक्ष्म	विष्टरश्रवस्	दनुसूनुसूदन	मधुभिद्
कृष्ण	कंसकृष्	विष्वक्सेन	मधुमथन	
केशव	कमलसरव	शार्ङ्गिन्	देवकीसुत	मधुसूदन
कैटभजित्	कैटभद्विष्	शौरि	जगत्पति	
गरुड़ध्वज	क्षितिसुतविद्विष्	श्रीपति	जगन्निवास	मुरजित्
चक्रधर	पुण्डरीकाक्ष	हरि	पुराणमूर्ति	मुरद्विष्
चक्रपाणि				
चतुर्भुज	पुरुषोत्तम	गदाग्रज	प्रियरथांग	मुरभिद्
जनार्दन	मधुरिपु	चक्रिन्	बलिमानमुष्	मुररिपु

मुरविद्विष्	विव
मुरवैरिन्	शार्ङ्गपाणि
मुरारि	श्रीभर्तृ
रथचरणधर	शिवकीर्तन
रथचरणपाणि	श्रीशरीरेश
रथांगपाणि	सलिलात्मन्
रथांगभर्तृ	सुपर्णकेतु
रथांगिन्	
रथावयवायुध	
लक्ष्मीपति	
वसुदेवजन्मन्	

इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों के स्थान पर माघ प्रयत्नपूर्वक नूतन अप्रचलित शब्द प्रयुक्त करना चाहते हैं। उनके इस प्रकार प्रयुक्त शब्दों की कुछ ऐसी सूची दी जा सकती है—

अप्रचलित प्रयुक्त शब्द	प्रचलित पर्याय
कठोर	पूर्ण
अग्रभूमि	प्राप्य स्थान
अभ्रमुभर्ता	ऐरावत
कौशिक	इन्द्र
मनुष्यधर्मा	कुबेर
विषाण	गजदन्त
निशान्त	गृह
प्रकम्पन	वायु
तनूनपात्	अग्नि
कीनाश	यम
काव्य	शुक्र
तपस्	धर्म
स्वर्भानु	राहु
वीवध	पर्याहार
मृगयु	व्याध
नरेन्द्र	विषवैद्य
तुरंगकान्तामुख-हव्यवाह	वडवाग्नि

कुशेशय	कमल
लोचक	कज्जल
दन्त	निकुंज
त्वक्सार	वंश
मंक्षु	द्रुतम्
पिचुमर्द	निम्ब
दासेरक	उष्ट्र
भोगावली	प्रबन्ध
पृषत्पति	वायु
निबरीस	निबिड
कक्ष्या	कांची
रुचिर	पति
अन्दूनिनाद	शृंखलाख
ताक्ष्य	रथ
व्युष्ट	प्रभात
प्रोह	गजांघ्रि
शृंखलक	उष्ट्र
रवण	उष्ट्र
सामज	गज
कालीय	कुंकुम
केसर	वामी (खच्चर)
लघ्वी	रथविशेष
प्रतिच्छन्द	प्रतिनिधि
पारी	दोहनपात्र
रोहिणी	गौ
निर्माण	पशुपादबन्धन
क्षितिक्षित्	क्षितीश
पुटभेदन	पत्तन
लयन	गृह
पस्त्य	भवन
नन्दथु	आनन्द
वलज	धान्यराशि
स्वापतेय	वित्त
आश्रव	आज्ञापालक

विष्टरश्रवा	श्रीकृष्ण
शुष्मन्	अग्नि
वनीयक	याचक
मुखभू	ब्राह्मण
रीण	क्षीण
अपष्ठु	असत्य
प्रतिघ	कोप
निज	नित्य
भुजिष्य	किंकर
विशिखा	रथ्या
वारिज	शंख
सरक	मधुपात्र
समीक	युद्ध
मानना	हनन
दुर्विध	दरिद्र
माधवान्	यादवान्
मलिम्लुच	पाटच्चर
नग्न	बन्दीजन
विष्क	विंशतिवर्षक
वारी	गजबन्धन-स्थान
वृत्त	मृत
आभील	भयंकर
कर्कर	दर्पण

इनके अतिरिक्त माघ ने अपने व्याकरण-ज्ञान के प्रौढ़ि-प्रदर्शन की इच्छा एवं सहारे से तमाम बीहड़ शब्द प्रयुक्त किये हैं। उदाहरणार्थ कुछ शब्द उद्धृत किये जा सकते हैं, जैसे—

न्यधायिषाताम्, पर्यपूपुजत्, अभिन्यवीविशत्, अचूचुरत्, प्रतिचस्करे व्यद्योतिष्ट, दन्दह्यते, दुःखाकरोति, इन्धनौघधक्, बहुतृणम्, बिभरांबभूवे, अध्यरुक्षत्, वितर्दिनिर्व्यूहविटंकनीडः, पारेजलम्, विपर्यणीनमन्, मध्येसमुद्रम् आदि।

चरित्रचित्रण

शिशुपालवध एक घटनाप्रधान महाकाव्य है। इसमें शिशुपाल के वध की घटना किस प्रकार घटी और उसे रसमयी विधि से कैसे महाकाव्य के कथानक का लक्ष्य बनाया जाए यही कवि का उद्देश्य है—नायक आदि की योजना तो अनिवार्य है, क्यों कि कर्ता, अधिष्ठान, विविधचेष्टा आदि के बिना तो घटना घट भी नहीं सकती, इसलिए की गई है। यद्यपि स्वयं माघ ने इसमें केवल लक्ष्मीपति के चरित-कीर्तन की चारुता बताई है, किन्तु वह चरित या अवदान शिशुपाल-ऐसे महादुष्ट के वध के रूप में ही है—कृष्ण के चरित्र का चित्रण नहीं। वस्तुतः राम, कृष्ण, विष्णु शिव आदि देवों से सम्बद्ध उनके नायकत्व में किसी काव्य की रचना करते समय कवि का पर्यवसायी भाव देवादिविषयक रति ही होती है। उनका लौकिक चरित-कीर्तन तो कथावस्तु को सरस बनाने के लिए होता है। कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, हरचरित आदि काव्य इसी रूप में हैं। अतः इन्हें स्तोत्रकाव्य का ही रूपान्तर कहा जा सकता है। किन्तु काव्यांग-रूप में कथानक की प्रगति करते समय कवि चरित्र-चित्रण की परिपाटी की भी सुतरां उपेक्षा नहीं कर सकता। अतः चरित्र का भी चित्रण स्वाभाविक ढंग से हो ही जाता है। अस्तु।

श्रीकृष्ण—माघकवि के आराध्य अभीष्ट देव हैं। इस महाकाव्य के वे नायक हैं—धीरोदात्त नायक। विनय, धैर्य, आर्जव, त्याग, दाक्षिण्य, सौन्दर्य, शौर्य, प्रताप आदि गुणों से सर्वथा सम्पन्न। विनय इनमें कूटकूट कर भरी है। उनकी मधुरमूर्ति विनय का आकर है। नारद के आकाश से भूमि पर उतरने के पूर्व ही वे उनके स्वागत में ससम्भ्रम अपने आसन से उठ खड़े होते हैं (शि०व० १।१२), अर्घ्यादि द्वारा उनकी भली प्रकार पूजा करते हैं (शि०व० १।१४) और उनकी पूजा कर स्वयं अत्यन्त प्रसन्न होते हैं (शि०व० १।१७)। नारद द्वारा छिड़की गई कमण्डलुस्थ तीर्थ-जल की बूंदों को वे नतमस्तक सिर पर स्वीकार करते हैं (शि०व० १।१८)। अपने से बड़ी वय एवं पद वालों (गुरुजनों) के प्रति उनकी यह विनय-भावना युधिष्ठिर के समक्ष भी दिखाई पड़ती है। इन्द्रप्रस्थ के पास पहुंचने पर अगवानी के लिए आते युधिष्ठिर को रथ से उतरते देख श्रीकृष्ण स्वयं उनसे पहिले

अपने रथ से कूद कर खड़े हो जाते हैं (शि०व० १३।७) और स्वयं जगद्वन्द्य होकर भी अपने गौरव को बढ़ाते हुए भूमिस्पर्श करते हुए उन्हें प्रणाम करते हैं। (शि०व० १३।८)। वहां पाण्डवों के बीच पहुंचकर उनके परिवार के लड़कों तक का नाम लेकर सम्बोधन करते हुए उनका कुशल पूछते हैं (शि०व० १३।६८) और यज्ञ के समय युधिष्ठिर के प्रश्रय निवेदन करने पर उन्हें आश्वासन देते हुए सविनय उत्तर देते हैं कि 'मुझे आप सभी कार्यों में लगायें। मुझे अर्जुन से पृथक् न समझें।' (शि०व० १४।१५) 'और आपके इस यज्ञकार्य में जो भृत्य की भांति कार्य नहीं करेगा, मेरा यह सुदर्शन उसके शरीर को कबन्ध-शेष कर देगा।'

(शि०व० १४।१६)

विनय ही नहीं, पूज्य के प्रति श्रीकृष्ण के हृदय में स्वाभाविक भक्ति भी है। नारद के आने पर उत्पन्न हर्ष जगन्निवास के शरीर में समा नहीं रहा था। (शि०व० १।२३) सूर्य के समान तेजस्वी मुनि नारद की ओर अपने हर्ष-विकसित नेत्रों से देखते हुए श्रीकृष्ण मानों यथार्थतः पुण्डरीकाक्ष हो रहे थे। (शि०व० १।२४) और उनके प्रति जो वाङ्मयी भाव-पुष्पांजलि चढाई उससे उनकी भक्ति पूर्ण प्रमाणित हो जाती है (शि०व० १।२६-३०)। वे कहते हैं, 'आपका दर्शन शरीर-धारी को भूत-वर्तमान-भविष्य तीनों कालों में पुण्यवान् एवं भाग्यशाली प्रमाणित करता है। मैं आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूं, तथापि आपके श्रीमुख से कुछ सुनने की इच्छा से आपके आगमन का प्रयोजन सुनने की धृष्टता कर रहा हूं।'

श्रीकृष्ण में सौन्दर्य के प्रति रुचि है। उनके अलंकरण इसी को प्रमाणित करते हैं। रैवतक की शोभा वे जब-जब देखते हैं विस्मित हो जाते हैं (शि०व० ४।१७) स्वयं भी तो ऐसे अलोक-सामान्य सुन्दर थे ही कि जिन्हें देखने इन्द्रप्रस्थ की सुन्दरियां 'अवधीरितान्यकरणीयसत्वरा' दौड़ती है। (शि०व० १३।३०-४९)

यद्यपि उनके प्रताप से अन्य नरेशों की सेना स्वत. उनके एकच्छत्र के नीचे आ जाती है (शि०व० २२।३३) किन्तु उनका दृष्टिकोण अत्यन्त प्रजातन्त्रात्मक है। इन्द्रप्रस्थ जाने का निर्णय बलराम और उद्धव के सलाह पर करते हैं। अपना मत उन पर नहीं थोपते। उनकी सुनते हैं और वही करते हैं। (शि०व० २।६, ८,१२)

उनका धीर रूप सबसे अधिक आकर्षक एवं आदर्श है। शिशुपाल के कटुतम वचन सुनकर भी तनिक भी विकृति नहीं प्राप्त करते। सत्यसन्ध सुजन को कटु-वचनों द्वारा भला कौन विचलित कर सकता है? (शि०व० १५।४०) गाली देते हुए उस शिशुपाल को केशव कोई उत्तर नहीं देते—सिंह मेघगर्जन के प्रति गरजता है, शृगाल के रोने के प्रति नहीं।

'प्रतिवाचमदत्तकेशवः शपमानाय न चेदिभूभजे।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहिगोमायुरुतानिकेसरी॥'
(शि०व० १६।२५)

शिशपालदूत के कटुसन्देश को सुनकर सारी यदुसभा क्षुब्ध हो जाती है, किन्तु श्रीकृष्ण का मन थोड़ा भी विकृत नहीं होता। वर्षा के जल से नदियों मे विकार आता है, सागर में नहीं—

'समाकुले सदसि तथापि विक्रियां मनोगमन्न मुरभिदः परोदितैः।
घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं नहि व्रजति विकारमम्बुधेः॥'
(शि०व० १७।१८)

और श्रीकृष्ण का, जो महाकाव्य के अंगीरस के लिए परम आवश्यक रूप है, वह है उनका युद्धवीर-रूप। युद्ध में उनका अलौकिक पराक्रम दिखलाई पड़ता है। (१६।९२-१२०) शत्रुगण को अकेले भी कृष्ण दो, तीन-चार रूप में दिखाई पड़ते थे (१६।११७)। शिशुपाल के सभी अस्त्रों को उन्होंने प्रतिहत कर दिया (२०।७६) और उसके वाग्बाणों का उत्तर चक्र से उसका शरीर शिरोविहीन कर दिया (शि०व० २०।७८) अन्त में श्रीकृष्ण के परमेश रूप को बताने के लिए ही शिशुपाल के तेज का उनमें लीन होना बताया (शि०व० २०।७९) गया है।

नारद—एक तेजस्वी (१।३,२४) तथा संगीत प्रेमी (१।१०), गुरुत्व (१।१३) एवं महत्त्व से मण्डित (१।२६-२८) भक्ति-ज्ञान-तपोराशि (१।३२-४०) देवर्षि के रूप में चित्रित हैं। इस काव्य में वे एक दूतरूप में इसके कथानक को गति देते हैं। (१।७३-७४)।

युधिष्ठिर—श्रीकृष्ण के बुआ के पुत्र हैं। श्रीकृष्ण के प्रति उनका अचल विश्वास (२।१०३) अगाध स्नेह, असीम विनय (१३।७-१०), दिव्य वात्सल्य (१३।११-१३, १८, १९) तथा अनन्य भक्ति (१४।१-११) है। वे एक आर्योचित-शिष्टाचार-कुशल सम्बन्धी है। अपने सर्वस्व श्रीकृष्ण को दुर्वचन कहते हुए भी शिशुपाल को अपनी ओर से आक्षेप नहीं करते, क्योंकि वह भी उनका सम्बन्धी (मौसेरा भाई) था तथा उनके निमन्त्रण पर यज्ञ में सम्मिलित हुआ था।
(शि०व० १५।६८)

शिशुपाल—यह इस महाकाव्य का प्रतिनायक या खलनायक है। वह अभिमान की प्रतिमूर्ति है (शि०व० १।७१,७२, १५।१२-१३) और निर्मर्याद दुर्वादी है। श्रीकृष्ण, भीष्म तथा पाण्डवों सबको कटुतम दुर्वचन कहता है (शि०व० १५।१४-३८, तथा प्रक्षिप्त १—३४ श्लोक) वह युद्ध-विज्ञान में अत्यन्त प्रवीण है (२०।१-७५)। श्रीकष्ण से उसका वैर बद्धमूल है। वह कृष्ण के प्रति ईर्ष्या एवं

क्रोध के कारण उन्हें एक क्षण को भी नहीं भूलता, और इसका परिणाम यह होता है कि युद्ध में मृत्यु के अनन्तर वह श्रीकृष्ण मे लीन हो जाता है—उसे श्रीकृष्ण के साथ सायुज्य-मुक्ति मिल जाती है।

इनके अतिरिक्त कुछ छोटे पात्र हैं जैसे—**बलराम, उद्धव एव सात्यकि।** इनके चरित्र की हल्की झांकी मिलती है।

बलराम—एक वीर, सत्साहसी योद्धा है, जो बढ़ते शत्रु की उपेक्षा नहीं कर सकते। एक भी शत्रु के बने रहते प्रतिष्ठा दुर्लभ समझते हैं। शत्रु से सामनीति द्वारा सफलता में विश्वास नहीं करते। (शि०व० २।२१-६६)।

उद्धव—अत्यन्त विवेकी, दूरदर्शी तथा सन्तुलित विचारों वाले राजनीतिज्ञ हैं। पूर्ण विवेक के साथ उचित समय पर किया हुआ कार्य ही सिद्धिप्रद होता है, इसमें उनका विश्वास है। स्वकीय-परकीय का विचार किये बिना किसी राजनीतिक को उग्र नही होना चाहिए। उनकी ही सलाह मान्य होती है (शि०व०२।७२-११७)।

सात्यकि—वीर योद्धा एवं प्रगल्भ प्रतिभावान् वक्ता है। उन्होंने शिशुपाल के दुर्मुख दूत को मुंहतोड़ उत्तर दिया (शि०व० १६।१७-३७)। शिशुपाल का दूत अपने स्वामी के प्रति निष्ठावान् है किन्तु दौत्य सीमा के बाहर निर्मर्याद भी बोल जाता है। (शि०व० १६।३९-८५)

दोषाभास

माघ काव्य को आद्यन्त पढ़ने के पश्चात् कोई भी सहृदय पाठक महाकवि की अद्वितीय काव्य-क्षमता से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है, और उसकी बुद्धि इस काव्य-वैभव से ऐसी अचम्भित हो जाती है कि उसे इसमें कहीं दोष दिखाई ही नहीं पड़ता। अपनी आतंकित बुद्धि से वह यही पद दुहराता है, 'माघेसन्ति त्रयो गुणाः।' किन्तु जब विधिसृष्टि तक गुणदोषमयी देखी जाती है, तो मानव-सृष्टि सर्वथा निर्दोष होगी ऐसा सोचना ही व्यर्थ है। अतएव काव्यलक्षण में मम्मट ने 'अदोषौ' विशेषण प्रयुक्त किया है, 'निर्दोषौ' नहीं। वहां 'नञ' पद से विद्यमान उपेक्षणीय दोषों को असत्कल्प माना जा सकता है। अस्तु। माघ में कहीं-न-कहीं कुछ इस प्रकार के खटकने वाले तत्त्व झलक ही जाते हैं, किन्तु वे उसकी अपरिमेय सम्पन्नता से छिपे रहते हैं। पकड़ में नहीं आते।

माघ का नूतन पर्यायों के ही प्रयोग का आग्रह कहीं-कहीं उन शब्दों की व्यंजकता ही नष्ट कर देता है। और इस प्रकार व्यंजना से शून्य होने पर वे शब्द वहां उसी प्रकार निःश्रीक भारभूत लगते हैं, जैसे अग्नि बुझ जाने पर कोयला। इसी तरह कभी-कभी अलंकार-योजना में नूतनता लाने के लिए वे असंभव एवं अनुचित कल्पना कर डालते हैं जैसे—'कमलकेसरकान्ति जटाओं को धारण किये हुए नारद की उपमा हिमालय से, जो अपनी हिमभूमि में विपक्वपीत लताएं धारण किये हुए है, देते हैं।' (शि०व० १।५)। उन्होंने सम्भवतः नगाधिराज की हिममण्डित-भूमि नहीं देखी थी जहाँ कोई वनस्पति हो ही नहीं सकती।

युधिष्ठिर-सभा का वर्णन करते समय कवि उस घटना का पहिले ही उल्लेख कर देता है, जो इस सभाप्रसंग के बहुत बाद हुई और वह है—'वहां सुयोधन के गिरने पर भीम के हँस देने से सकल-क्षत्रिय-विनाशक-युद्ध रूप याग'। (शि०व० १३।५९) यह ऐतिहासिक काल-चक्र का अति-क्रमण खटकता है।

महावैयाकरण होते हुए भी उनका एक प्रयोग अपाणिनीय प्रतीत होता है। वह है—'सत्त्वानिनिन्येनितरां महान्त्यपि व्यथां द्वयेषामपिमेदिनीभृताम्।' (शि० व० १२।१३) में 'द्वयेषाम्'। 'द्वय' शब्द को तयप् प्रत्ययान्त होने के कारण केवल प्रथमा बहुवचन 'जस्' विभक्ति में विकल्प से सर्वनामता होती है। अन्यत्र कहीं नहीं। चान्द्रवर्मण व्याकरण में या अन्यत्र इसकी साधुता चाहे भले मानी गई हो, किन्तु पाणिनि-व्याकरण से यह प्रयोग चिन्त्य ही माना जाएगा।

प्रदान

जैसा कि पूर्व प्रकरण में संकेतित है कि परवर्ती काव्यरचना-शैली पर माघ का आतंक-सा छा गया था। अतएव कहा जाता था—'माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।' परवर्ती कवि यथाशक्ति माघ की शैली का अनुकरण करता था। परवर्ती महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान श्रीहर्ष के नैषधीयचरित का है, जो अपनी काव्यकल्पना, व्युत्पत्ति एवं पदलालित्य के कारण किरात, माघ दोनों से उत्कृष्ट माना जाता है—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:।'' किन्तु उस नैपध में भी माघ की झलक यत्र-तत्र दिखाई पड़ जाती है। माघ से प्रेरणा लेकर श्रीहर्ष ने अपनी कल्पना के भव्य प्रासाद खड़े किए हैं। हाँ, श्रीहर्ष की प्रतिभा कुछ और आगे बढ़ गई है। यहां केवल श्रीहर्ष की माघ के प्रति अधमर्णता का विवेचन किया जाएगा और 'प्रधानमल्लनिर्वहणन्याय' से अन्यों की अधमर्णता स्वत: मान ली जाएगी। यहां कुछ स्थल उद्धृत किये जाते हैं :

१. द्वारिकापुरी के वर्णन में माघ ने उसे मानो दर्पण-निर्मल जल में प्रतिबिम्बित स्वर्गपुरी उत्प्रेक्षित किया है :

'अदृश्यतादर्शतलामलेषुच्छायेव या स्वर्जलधेर्जलेषु।

(शि०व० ३।३५)

तो श्रीहर्ष ने भी कुण्डिनपुर को किसी जलाशय में प्रतिबिम्बित सुरनगरी-सी माना है और उस नगरी के चारों ओर जलपूर्ण परिखा उस जलाशय का प्रतिबिम्व के बाहर का अंश बताया है।

'विललास जलाशयोदरे क्वचनद्यौरनुबिम्बितेव या।
परिखाकपटस्फुटस्फुरत् प्रतिबिम्बानवलम्बिताम्बुनि॥'

(नै० २।७६)

२. रात की चमकती चांदनी में धवल-स्फटिकनिर्मित द्वारिका की सौध-राजि अलग से नहीं प्रतीत होती। अत: उन महलों की अट्टालिकाओं पर चढ़ने पर सुन्दरी (निराधार) आकाश में स्थित देवांगना ही लगती थीं।

'स्फुरत्तुषारांशुमरीचिजालैर्विनिह्नुतास्फाटिकसौधपंक्ती:।
आरुह्यनार्य: क्षणदासु यत्र नभोगता देव्य इवव्यराजन्॥'

(शि०व० ३।४३)

और इसी प्रकार कुण्डिनपुर की भी सुन्दरी गगनचुम्बी सौधशिखर से अपने प्राणेश्वर के क्रीडागृह में जाती हुई साक्षात् अप्सरा ही प्रतीत होती थी—

'स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकातिथ्यग्रहायोत्सुकं
पाथोदंनिजकेलिसौधशिखरादारुह्ययत्कामिनी।
साक्षादप्सरसो विमानकलितव्योमान एवाभवद्
यन्न प्राप निमेषमभ्रतरसा यान्ती रसादध्वनि॥'

(नै० २।१०४)

३. द्वारिकापुरी में चन्द्रकान्तमणियों की बनी अट्टालिकायें इतनी ऊंची हैं कि मेघ उनके अधोभाग में रहते हैं। फिर भी रात्रि में चन्द्रकिरणों के सम्पर्क से उन अट्टालिकाओं से जल की धारा गिरा करती है—

'कान्तेन्दुकान्तोत्पलकुट्टिमेषु प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र।
उच्चैरधःपातिपयोमुचोऽपिसमूहमूहुः पयसांप्रणाल्यः॥' (शि०व० ३।४४)

इसी तरह कुण्डिनपुर में भी भवनों की उच्च अट्टालिकाओं की चन्द्रकान्त मणियों से प्रतिचन्द्रोदय के समय इतना जलस्राव होता है कि आकाश-गंगा (चन्द्रोदय के समय अपने पतिसागर की भाति बढ़कर) अपने पातिव्रत्य धर्म को नहीं छोड़ती।

४. यादव-रमणियों की शरीर-सुषमा का वर्णन करते हुए माघ ने एकावली अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है—उन सुन्दरियों को सुन्दरता ने अलंकृत किया, उस सुन्दरता को यौवनागम ने, यौवनागम को मदनविलास ने, और मदन-विलास को प्रियसंगमजन्य हर्ष ने अलंकृत किया—

'चारुतावपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः।
त पुनर्मकरकेतनलक्ष्मी स्तां मदो दयितसंगमभूषः॥'

(शि०व० १०।३३)

दमयन्ती की रमणीयता के वर्णन में श्रीहर्ष ने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—पहले तो ब्रह्मा ने ही इसे लोकोत्तर बनाया, फिर यौवन ने इसे और ऊपर पहुंचाया और अन्त में मदन ने विभ्रमकलाओं को पढ़ाकर तो अवर्णनीय ही बना डाला—

'सृष्टातिविश्वाविधिनैव तावत्तस्यापि नीतोपरि यौवनेन।
वैदग्ध्यमध्याप्य मनोभुवेयमवापिता वाक्पथपारमेव॥' नै० ७।१०८

५. युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भीष्म ने श्रीकृष्ण के कूर्म, वराह आदि अवतारों की महिमा गायी है (शि०व० १४।७१-८६)। उसी प्रकार नैषध में भी राजा नल ने मध्याह्न-अर्चना के प्रसंग में विष्णु के अवतारों का स्तुति-गान किया है। (नै० २१।५५-६३)।

६. युधिष्ठिर के यज्ञ में श्रीकृष्ण की प्रथमपूजा से क्रुद्ध होकर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के प्रति जो अनर्गल दुर्वाद कहे, उनमें इतनी भर्त्सना तथा कटुता थी कि महाभारत का वह अंश (सभापर्व, अध्याय ४१) माघ-जैसे कृष्ण-भक्त के लिए असह्य था। अत: उन्होंने अपने काव्य में उसके उन वचनों को श्लेष से अलंकृत कर उनमें द्वितीय अर्थ की भी सम्भावना रख छोड़ी। (शि०व० १५।१-३४ तथाकथित प्रक्षिप्त श्लोक)। फिर षोडशसर्ग में युद्धसन्नद्ध शिशुपाल का दूत द्वारा भेजा गया सन्देश प्रिय-अप्रिय दोनों प्रकार का अर्थवहन करता है (शि०व० १६।२-१५)। माघ ने युद्ध-वर्णन में एक श्लोक को तीन अर्थों वाला बनाया है। (शि०व० १६। ११६) श्रीहर्ष को तेरहवें सर्ग की श्लेषमयी रचना करने की प्रेरणा यहीं से मिली और उन्होंने पांच अर्थों वाला तक श्लोक बना डाला।

७. माघ ने रैवतक-गिरि पर अपनी रमणियों के साथ मस्ती से गाते हुए सिद्धों के स्वर का विशेषण 'भाविक' दिया है—

'प्रगीयते सिद्धगणैश्चयोषितामुदारमन्ते कलभाविकस्वरैः।"

(शि०व० ४।२३)

श्रीहर्ष ने भी प्रभात वर्णन करने वाले वैतालिकों के पदों को 'भाविक' विशेषण दिया है :

'श्रुतिमधुपदस्रग्वैदग्धीविभावितभाविकस्फुटरसभृशाभ्यक्ता वैतालिकैर्जगिरे गिरः।"

(नै० १६।१)

८. इन्द्रप्रस्थ पहुंचकर भीम एवं अर्जुन के मध्य रथ में बैठे श्रीकृष्ण ऐसे लगते थे जैसे दो ग्रहों के मध्य स्थित चन्द्रमा दुरुधरा योग प्राप्त कर होता है—

'पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिनानितरामरोचि रुचिरेणचक्रिणा।
दधतेवयोगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितंदुरुधराख्यमिन्दुना॥'

(शि०व० १३।२२)

इसी प्रकार नैषध में कानों में दो दमकते कुण्डलों के बीच दमयन्ती का मुखचन्द्र निश्चित 'दौरुधरी' स्थिति को प्राप्त कर रहा था—

'अवादिभैमीपरिधाप्यकुण्डले वयस्ययाभ्यामभितः समन्वयः।
त्वदाननेन्दोः प्रियकामजन्मनि श्रयत्ययं दौरुधरी-धुरं ध्रुवम्॥'

(नै० १५।४२)

इनके अतिरिक्त अनेक पदों तथा वाक्यों के प्रयोग को श्रीहर्ष ने माघ से लिया है। यदि हम भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष को युगपत् तुला पर मानार्थ रखें तो देखेंगे कि भारवि के भावों को अधिक परिष्कृत माघ ने किया है तथा माघ के भी भावों को और अधिक परिष्कृत श्रीहर्ष ने किया है। इनमें यथोत्तर भव्यता है।

माघविषयक प्रशस्तियां

काव्यरचना में उनके सर्वांगीण उत्कर्ष को देखकर ही प्राचीन कवियों एवं आचार्यों ने माघ की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनकी कुछ प्रशस्तियां इस प्रकार है—

१. उपमाकालिदासस्यभारवेरर्थगौरवम् ।
 दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्तित्रयोगुणाः ॥
२. तावद् भा भारवे र्भाति यावन्माघस्यनोदयः ।
३. माघेन विघ्नितोत्साहानोत्सहन्ते पदक्रमे ।
४. मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे मतिं कुरु ।
 मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे मतिं कुरु । इत्यादि ।

परवर्ती कवियों पर माघ का प्रभाव अत्यधिक लक्षित होता है। वे ही उनके आदर्श हुए। उनकी यह एक मात्र कृति 'शिशुपालवध' उनकी कीर्तिवैजयन्ती को अनन्तकाल तक काव्यगगन में आन्दोलित करती रहेगी।

पुस्तकानुक्रमणी

१.	एकादशोपनिषद्	
२.	काव्यप्रकाश (का०प्र०)	मम्मट
३.	काव्यालंकार	भामह
४.	काव्यालंकार	रुद्रट
५.	काव्यादर्श	दण्डी
६.	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (का०सू०वृ०)	वामन
७.	किरातार्जुनीय	भारवि
८.	कुमारसम्भव	कालिदास
९.	दशरूपक	धनञ्जय
१०.	नैषधीयचरित (नै०च०)	श्रीहर्ष
११.	ध्वन्यालोक (ध्व)	आनन्दवर्धन
१२.	भट्टिकाव्य	भट्टि
१३.	भोजप्रबन्ध	बल्लाल
१४.	प्रबन्धचिन्तामणि	मेरुतुंग
१५.	प्रभावकचरित	चन्द्रप्रभसूरि
१६.	महाभारत (म०भा०)	वेदव्यास
१७.	मुहूर्तचिन्तामणि	राम
१८.	योगसूत्र	पतञ्जलि
१९.	महाभाष्य	पतञ्जलि
२०.	रामायण	वाल्मीकि
२१.	रघुवंश	कालिदास
२२.	वेदान्तसूत्र	बादरायण
२३.	शिशुपालवध (शि०व०)	माघ
२४.	श्लोकवार्तिक	कुमारिल भट्ट
२५.	सांख्यकारिका(सां०का०)	श्रीकृष्ण

श्रीचण्डिकाप्रसादेन, लोलार्कोपाख्यशर्मणा।
कृता माघसमीक्षेयं शुक्लेन स्यात् सतां मुदे॥